डी.सी.सी.टी.-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

डिप्लोमा कोर्स इन कल्चर एण्ड टूरिज्म
संस्कृति एवं पर्यटन में डिप्लोमा कोर्स

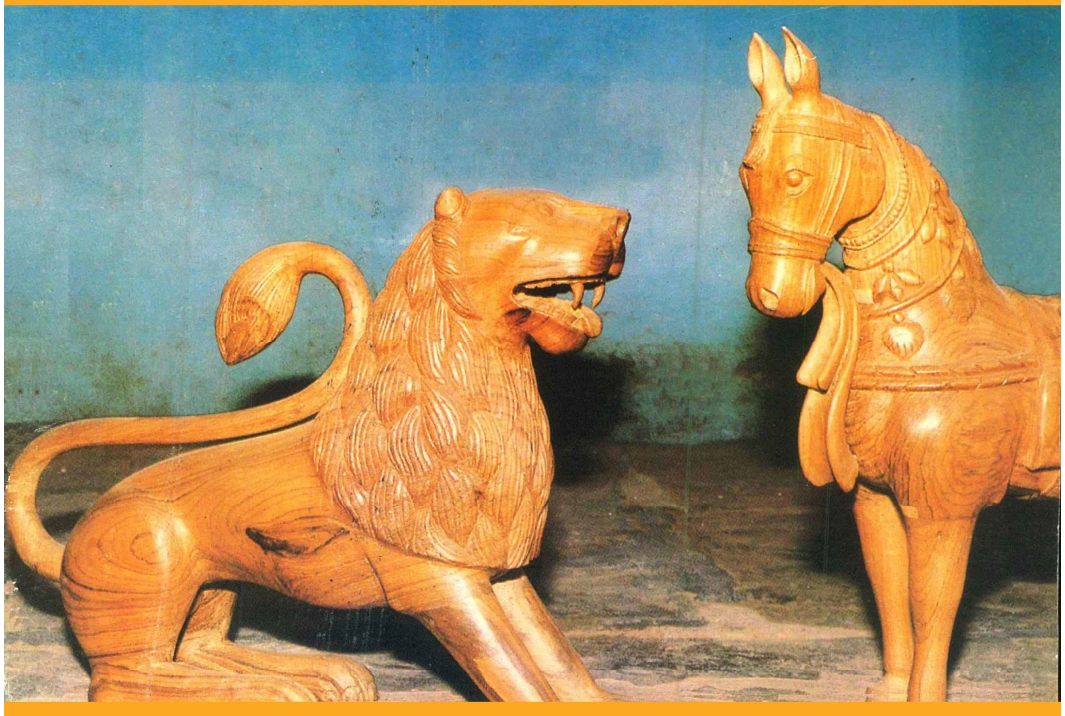

Traditions and Culture of the People of Rajasthan (Arts and Crafts)

"राजस्थान के निवासियों की परम्पराओं एवं संस्कृति की एक रूपरेखा" (कला एवं शिल्प)

डी.सी.सी.टी.-03

Diploma Course in Culture and Tourism 4

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

डिप्लोमा कोर्स इन कल्चर एण्ड टूरिज्म
संस्कृति एवं पर्यटन में डिप्लोमा कोर्स

Traditions and Culture of the People of Rajasthan (Arts and Crafts)

राजस्थान के निवासियों की परम्पराएँ एवं संस्कृतिः (कला एवं शिल्प)

डी.सी.सी.टी. - 03

Diploma Course in Culture and Tourism 4

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

(1) प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा
कुलपति, कोटा खुला विश्वविद्यालय
कोटा

(2) प्रो. दिलबाग सिंह
इतिहास विभाग,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

(3) प्रो. रविन्द्र कुमार
निदेशक, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लायब्रेरी,
तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली

(4) **डॉ. आर.के. सक्सैना**
रिटायर्ड अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एम.एल. सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

(5) प्रो. जी.एन. शर्मा
रिटायर्ड प्रोफेसर, इतिहास व संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

(6) प्रो. एस.एन. दूबे
इतिहास एवं संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

(7) प्रो. एम.बी. माथुर
पूर्व कुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

(8) पदमश्री (श्रीमती) लक्ष्मी कुमारी चूड़ावत
प्रसिद्ध साहित्यकार एवं मनीषी,
बनीपार्क, जयपुर

(9) प्रो. एम.एस. जैन
रिटायर्ड प्रोफेसर, इतिहास एवं संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

(10) प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा (संयोजक)
अध्यक्ष,भारतीय संस्कृति एवं परम्परा विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

(1) डॉ.(श्रीमती) निशि माथुर
विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
जा. दे. ब. क. महाविद्यालय, कोटा

(2) प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा
अध्यक्ष, भारतीय संस्कृति एवं परम्परा विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

(3) **श्री आर.एल. माथुर**
निदेशक, संगीत एवं नृत्य
जवाहर कला केन्द्र, जयपुर

(4) डॉ. महेन्द्र भानावत
प्रसिद्ध लेखक एवं कलामर्मज्ञ
उदयपुर

(5) श्री रामकुमार
लेखक एवं पत्रकार
कोटा

(6) डॉ. आर.पी. व्यास
भूतपूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग
श्री जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

सम्पादन एवं संशोधन

प्रो. जी. एस. एल. देवड़ा, अध्यक्ष,
भारतीय संस्कृति एवं परम्परा विभाग,
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.)अनाम जेटली**	**प्रोफेसर(डॉ.) पी.के. शर्मा**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राज.)

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस पाठ्यक्रम पुस्तिका का कोई भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति प्राप्त किये बिना या मिमियोग्राफी अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करना वर्जित है।

कोटा खुला विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कुल सचिव वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, रावतभाटा रोड, से प्राप्त की जा सकती है।

4 राजस्थान के निवासियों की परम्पराएँ तथा संस्कृति: कला एवं शिल्प

इकाई -22	संगीत-गीत एवं वाद्य	7–24
इकाई -23	राजस्थान के संगीतज्ञ	25–40
इकाई- 24	राजस्थान के नृत्य(शास्त्रीय नृत्य परम्पराएँ)	41–48
इकाई- 25	राजस्थान के लोक नृत्य	49–63
इकाई- 26	रंगमंच एवं लोक नाट्य	64–74
इकाई- 27	कठपुतलियाँ तथा विभिन्न प्रकार की जीवन्त प्रस्तुतियाँ	75–85
इकाई- 28	राजस्थान में दरबारी संस्कृति एवं शिष्टाचार	86–100

इकाई सं. 22 "संगीत-गीत एवं वाद्य''

इकाई संरचना

22.01 उद्देश्य
22.02 प्रस्तावना
22.03 लोक-जीवन और लोक-गीत
22.03.1 लोक गीत की परिभाषा
22.03.2 लोक गीतों का विकास
22.03.3 लोग गीतों की विशेषताऐं
22.04 लोक गीतों की व्यापकता
22.04.1 गीतों का मूलाधार
22.04.2 गीतों का वर्गीकरण
22.05 राजस्थानी गीतों की परम्परा
22.05.1 विभिन्न राजस्थानी गीत
22.06 गीत और संगीत पक्ष
22.07 गीतों की रस व्यंजना
22.08 लोक संगीत के वाद्य तथा ताल
22.09 इकाई सारांश
22.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

22.01 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको राजस्थान के संदर्भ में संगीत का सांस्कृतिक अध्ययन विशेष रूप से राजस्थान के गीतों और वाद्यों के सम्बन्ध में जानकारी देना है । हम इस इकाई में गीतों और वाद्यों का विस्तृत विवेचन करेंगे । इस इकाई का अध्ययन कर लेने पर आपको निम्नलिखित बातों का ज्ञान हो जायेगा ।

- लोक - जीवन और लोक गीत
- लोक धुनों या गीतों की विशेषताएं
- लोक गीतों की व्यापकता
- गीतों में रस
- गीतों में प्रयुक्त होने वाले वाद्य एवं ताल

22.02 प्रस्तावना

सम्पूर्ण राजस्थान के जन जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले भावनापूर्ण गीत लोक जीवन के दर्पण हैं । जिसमें जन मानस की सारी भावनाओं, संवेदनाओं, ईर्ष्या, द्वेष,स्नेह-सम्मान,माधुर्य-कटाक्ष, विरह तथा मिलन प्रतिबिम्बित होते हैं ।

राजस्थान तो गीतों का अक्षय भंडार है । राजस्थान की अपनी संस्कृति और परम्परा रही है । रंगों से भरपूर यह मरूप्रदेश, शौर्य, पराक्रम एवं बलिदान के लिये जितना विख्यात रहा उतना ही

यहाँ के अनेक त्यौहारों और उत्सवों के लिये भी प्रसिद्ध रहा है । ऐसे अनेकों गीत राजस्थान में हैं, जो सर्वव्यापी, सर्वप्रिय, सर्वग्राह्य तथा सर्वकालीय हैं । लोक गीत जन मानस की गहराईयों की सरलतम अभिव्यक्ति है । भिन्न -भिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले लोग गीत जहा आज भी उन परम्पराओं को संजोये हुए हैं । वहीं यहां के जन जीवन में नये उत्साह और हर्षोल्लास का संचार करते हैं ।

राजस्थान लोक गीतों के माध्यम से जहां त्यौहारों और पर्वों से जुड़ी कथाओं की अभिव्यक्ति होती है वहीं गाने वालों और सुनने के वालों का मन आल्हाद से झूम उठता है । ऐतिहासिक साहित्य के संदर्भ में आप इन गीतों का महत्व पाठ्यक्रम द्वितीय की इकाई स. 32 में भी कर पायेंगे ।

22.03 लोक जीवन और लोक गीत

राजस्थान लोक जीवन और जीव की क्रिया-कलापों से ही सम्बन्धित है । भाषा के उच्चारण विशेषताओं, स्थिति मे भेद होते हुये भी गीतों भरा मानव हृदय तथा उसके सुख-दुःख की अनुभूति, उसकी स्थिति, परिस्थिति, उसकी आशा-निराशा, उसकी कुण्ठा और विवशता एक जैसी ही है । युद्ध, शांति, खेती, व्यवसाय, प्रेम, घृणा, मस्ती, उन्मुक्तता इस धरती पर सभी ओर दिखाई देती है । यही स्थितियां देशभर के गीतों में दिखाई देती है ।

लोक गीतों ने प्रेरणा के मूल-स्रोत से अपने को कभी अलग नहीं किया । यद्यपि गीत किसी एक व्यक्ति की धरोहर नहीं होते हैं । ये समाज में स्वत : ही उत्पन्न होते हैं और स्वत: ही जन समाज में एक पीढ़ी से दूसरी और इस प्रकार आगे की पीढ़ी तक थिरकते-गूंजते चले जाते हैं । इनसे प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और विचारशीलता का प्रवाह चलता रहता है।

22.03.1 लोक गीत की परिभाषा

“लोक कला " शब्द जिस अर्थ मे प्रयुक्त हो रहा है वह अर्थ हमारे लिये नया नहीं है, वस्तुत: उसे 'प्राकृत -कला ' कहा जाना चाहिये । प्राकृत शब्द का अर्थ- अपरिष्कृत अथवा अपरिमार्जित है । सामान्यत: अशिक्षित व्यक्ति को प्राकृत कहा जाता है । लोक शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है । ऋग्वेद मे “देहि लोकम्” का प्रयोग हुआ है, यहाँ लोकम् का प्रयोग स्थान के लिये हुआ है । वेदों में लोक दो प्रकार के माने हैं - पार्थिक ओर दिव्य किन्तु ' 'ब्राह्मण -ग्रंथ ", ' 'बृहदारण्यक उपनिषद् " एवं ' 'वाजसनेयी संहिता " आदि में लोक के सम्बन्ध में ऐसा कोई भेद दिखायी नहीं देता ।

“फोक" (Folk) शब्द हिन्दी के 'लोक ' का पर्यायवाची कहा जा सकता है । लोक-गीत शब्द प्रधान है । परन्तु स्वर प्रधानता और शब्द प्रधानता तो विभिन्न शैलियों में होती है । लोक संगीत का अपना ही माधुर्य होता है । जो जन साधारण को अपनी ओर आकर्षित करता है । लोक संगीत सरल एवं साधारण वाक्य से ओत -प्रोत होता है और अपनी इसी सरलता के कारण हृदय के गहरे से गहरे भाव को छू लेता है । गीतों में ग्रामीण जनता अपने नित्य प्रति 'के कार्यों का वर्णन करती है । इन गीतों में अधिकतर खेती-बाड़ी के समय का वर्णन हल चलाते समय, बोझा उठाते समय, जल भरने के समय, फसल काटते समय, बीज बोते समय । सामाजिक रिवाजों में जैसे-जन्म, नामकरण, संस्कार, विवाह, मृत्यु व त्योहारों पर उन कार्यों का वर्णन होता है । कई गीतों में पक्षियों की बोलियों का वर्णन होता है । अन्य में ऋतुओं का व फसलों का वर्णन पाया जाता है । प्रकृति और मानव जीवन ही इस

संगीत के प्रेरणा के स्रोत हैं ।लोक संगीत मानव जीवन की अभिव्यक्ति है । मानव जीवन का दुख -दर्द, हर्ष, विवाद, संघर्षमय जीवन की रहस्यमय गहन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति इन लोक गीतों में सहज हो सकते है । इनकी धुन और लय मानव के थकित एवं श्रम से कलान्त जीवन को हिलौरें देती हैं ।

22.03.2 लोक गीतों का विकास

आदिम अवस्था में भाषा के जन्म से पहिले विभिन्न पशु-पक्षियों, वर्षा, आधी आदि का संप्रेषण हेतु अनुकरण करना मनुष्य की बाध्यता थी । वस्तुत: मनुष्य द्वारा ध्वनि का नियंत्रण पूर्वक प्रयोग ही संगीत का उद्भव काल कहा जा सकता है विभिन्न ध्वनि प्रतिध्वनियां का प्रयोग करते-करते उसे इनके आरोह-अवरोह का ज्ञान होने लगा और ध्वनि का आरोह व आरोहात्मक प्रयोग धीरे- धीरे अनेक स्वर लहरियों की सृष्टि करने लगा । अपनी स्मरण शक्ति और पुनरावृत्ति के द्वारा जीवित रखने का प्रयत्न उसने अवश्य ही किया होगा और वहीं से आदिम युगीन संगीत का प्रारम्भ हुआ होगा।

वैदिक काल में विभिन्न ऋचाओं और मन्त्रों के उच्चारण के लिये आर्चिक, (एक स्वर के) गाथिक (दो स्वरों के) ओर सामिक (तीन स्वरों के) गान का प्रचार था । यदि कहा जाये कि लोक-संगीत में लय को ताल से अधिक महत्व प्राप्त है, तो उचित ही होगा । मुख्य उद्देश्य तो काव्य को प्रभावोत्पादक बनाए रखने की ओर होता है । अधिकांश लोक गीतों में चार से अधिक स्वर प्रयुक्त नहीं होते व कहीं-कहीं तो केवल दो स्वर ही होते हैं ।

प्राचीन काल में मानव का प्रकृति के साथ घनिष्ट रहने के कारण उनकी हर क्रिया प्राकृतिक थी । वहीं प्रभाव संगीत पर भी था । जिसमें स्वाभाविकता अधिक तथा अलंकारिकता कम, पर प्रकृति पर विजय पाने के पश्चात् कृत्रिमता की ओर जाने लगा तथा संगीत अलंकृत किया जाने लगा । इस परिवर्तन ने नयी धाराओं को जन्म दिया ।

वैदिक युग में भी पर्वों के अवसरों पर मनोहर गाथाओं के गाने का निर्देश वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है । वाल्मीकि रामायण में राम-जन्म के समय तथा श्रीमद्भागवत में कृष्ण जन्म के अवसर पर स्त्रियों के एकत्र होकर मनोरंजक सामाजिक गीतों के गाने का स्पष्ट वर्णन मिलता है ।

लोक गीत में मुख्य तीन वस्तुओं का प्रयोग होता है वह इस प्रकार है :

1 - गीत (शब्द योजना) 2 - धुन (स्वरयोजना) 3 - वाद्य (स्वर तथा लय योजना) गीतों के लोक-साहित्य के अन्तर्गत और उन गीतों को धुनों तथा उनके साथ-साथ प्रयुक्त वाद्यों को लोक-संगीत के अन्तर्गत रखा जा सकता है । लोक गीतों के साहित्य की अपेक्षा उसके संगीत पक्ष का आकर्षण बहुत अधिक होता है । गीतों का स्वाभाविक एवं प्राकृतिक रूप सभी स्थानों में एक सा दिखाई पड़ता है, संगीत वे: स्वर तथा लय का आनन्द समस्त प्राणियों में प्राप्त होता है।

लोक गीतों में संगीत के अन्तर्गत दो भिन्न -भिन्न धाराएँ दिखाई पड़ती हैं । एक धारा उन गीतों की धुनों के रूप में तरंगित होती है, दूसरी विभिन्न धारा विभिन्न वाद्यों की स्वर-लय-लहरियों का रूप धारण करती है । गीतों में अधिकांश ऐसे होते हैं जिनमे गीत किसी पुन विशेष में गाया जाता है तथा उसके साथ स्वर और लय के अथवा केवल लय के वाद्य बजाये जाते हैं, किन्तु कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है जिनमें गीत गाया नहीं जाता अपितु, उसे पाठ की तरह पढ़ा जाता है । ऐसे गीतों में लय की प्रधानता होती है । 'लय ' लोक संगीत का एक अविभाज्य अंग होने के कारण उसका

संरक्षण एवं संवर्द्धन लोक संगीत की सभी धाराओं में आदि काल से विद्यमान है, अधिकांश लोक संगीत में मध्य तथा द्रुत लयों का प्रयोग होता है । विलम्बित लय का प्राय: अभाव है ।

22.03.3 लोक गीतों की विशेषताऐं:

डॉ. यदुनाथ सरकार के अनुसार प्रबन्ध की द्रुतगति, शब्द विन्यास की सादगी विश्व जननी मर्मस्पर्शी और आदिम मनोवेग, सूक्ष्म किन्तु प्रभावोत्पादक चरित्र चित्रण. क्रीड़ास्थली अथवा देश काल का स्थूल अंकन साहित्यिक कृत्रिमताओं का न्यूनाति प्रयोग या सर्वथा बहिष्कार सच्चे लोग गीत की ये नितान्त आवश्यक विशेषताऐं हैं । जार्ज सैपसन के मतानुसार लोक गीत में स्वरों और शब्दों का ऐसा गत्यात्मक संयमन होता है जो गीत को छन्दोबद्ध करके नृत्य की ताल व लय के अनुकूल बना देता है ।

लोक गीतों में साधारण : प्राप्त होने वाली विशेषताएं इस प्रकार हैं

1. वैयक्तिकता का अभाव :

लोक गीत की रचना सामूहिक प्रस्तुति के लिये होती है । किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा नहीं इसलिये उसमें वैयक्तिक भावना का अभाव रहता है व अपने निजीत्व को कहीं भी आरोपित नहीं कर सकते ।

2. मौखिक परम्परा :

लोक गीतों का अस्तित्व असंख्य कण्ठों पर मौखिक परम्परा के रूप में विद्यमान है आदि काल से वेदों के अध्ययन की परम्परा भी मौखिक ही थी । मौखिक परम्परा के प्रवाह में लोक गीतों का प्राण तत्व अमृत-सिंचित होकर प्रगति का संचार पाता है ।

3. भावों की लयात्मक अभिव्यक्ति :

लोक गीतों की आत्मा है लय । लोक के हृदय से निःसृत सीधे सादे शब्दों का संस्पर्श जब इस लय तत्त्व से होता है तो वे अद्वितीय सौन्दर्य से संयुक्त होकर असीम आनन्द की सृष्टि करते हैं तब मधुर कण्ठ स्वर की लहरो पर तैरता हुआ विलक्षण सरसता को प्राप्त करता है ।

4. पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति :

किसी पंक्ति विशेष की पुनरावृत्ति लोक गीत में महत्वपूर्ण स्थान रखती है अधिकतर गीत की प्रथम या द्वितीय पंक्ति की आवृत्ति की जाती है । हर गीत में एक टेक पद होता है, गायक उन टेक पदों की पुनरावृत्ति द्वारा श्रोताओं के अन्त करण में विशेष प्रभाव की उत्पत्ति कर देते हैं । पंक्तियों की पुनरावृत्ति से गीत में संगीत का सौन्दर्य बढ़ जाता है ।

5. प्रश्नोत्तर प्रणाली

गीत की प्रथम पंक्ति में प्रश्न व द्वितीय पंक्ति में उत्तर की योजना रहती है । इस प्रकार की प्रणाली से गीत में जिज्ञासात्पादक उत्कंठा का आविर्भाव होता है, जो श्रोताओं के लिये आनन्दकारी सिद्ध होता है ।

6. संख्याओं का प्रयोग:

अधिकतर तीन, पांच, सात, नौ, बत्तीस व छप्पन आदि संख्याओं का प्रयोग प्रचुरता से होता है ।

7. निरर्थक शब्द योजना :

लय तथा तुक की व्यवस्था के लिये गायक अनेक निरर्थक शब्दों का समावेश कर देते है । कविता की तुकबंदी की भांति लोक गीतों की रचना नहीं होती, वहा गीत की प्रत्येक पंक्ति किसी प्रकार की नियमबद्धता से स्वतंत्र रहती है । ऐसी स्थिति में संगीत की रक्षा के लिये निरर्थक शब्दों द्‌वारा पंक्तियों में सामंजस्य उत्पन्न किया जाता है ।

8. वस्तु नाम गणना :

गीतों में वस्तुओं, आभूषणों, मिठाइयों आदि की दीर्घ परिगणना प्राप्त होती है । विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के समावेश के कारण किसी गीत का क्षेत्रीय परिचय मिल जाता है । जिस राज्य का या क्षेत्र का गीत होता है वहा की विख्यात वस्तुओं का या अत्यधिक प्रचलित सामग्रियों का समावेश उसमें सामान्यत: होता है ।

9. अलंकारिकता स्वाभाविकता :

कविता के समान अलंकार की योजना लोकगीतों में नहीं रहती । वहा सीधे सच्चे भावों की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है । मन की अनुभूति सीधे शब्दों में व्यक्त होती है । उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षादि अलंकारों के प्रयास-जन्य आवरण में नहीं ।

22.04 लोक गीतों की व्यापकता

राजस्थान में अधिकांश गीतों का जन्म घर में चक्की चलाते, खेती बाड़ी का काम करते, घर के अन्य काम करते हुए । सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत रूप से स्त्रियां गीत बनाती रहती है । गीतों के कथानक या उनमें आने वाले नामों आदि से यह पता लग जाता है कि ये गीत कब आरम्भ हुये । लोक साहित्य के प्रति रूचि यूरोप में भी बहुत पहिले से उत्पन्न हुई प्रतीत होती है । सत्रहवीं शताब्दी में जॉन ऑब्रे नामक लेखक की पुस्तक से स्पष्ट होता है कि लोक- साहित्य के प्रति रुचि विद्‌वानों में होने लगती थी । धीरे - धीरे यह साहित्य एक वैज्ञानिक रूप धारण करता चला गया और सम्पूर्ण यूरोप में इसका विशिष्ट अध्ययन होने लगा । हिन्दुस्तान की भिन्न -भिन्न जातियों, यहाँ के रीति -रिवाजों, मेले -त्यौहारों, विवाहोत्सवों आदि ने अंग्रेजी शासकों में जिज्ञासा उत्पन्न की । कुछ विद्‌वानों ने कर्नल टाड को भारत मे लोक -वार्ता का प्रथम संकलनकर्ता माना है । सी .ई. गोव्हर का ग्रन्थ 'फोक साँग्स ऑफ सदर्न इंडिया ' सन् 1892 ई. में प्रकाशित हुआ । यही ग्रन्थ भारत में लोक साहित्य का प्रथम ग्रन्थ माना जाना चाहिये । क्योंकि लोक गीतों का मुद्रित संकलन यह सर्वप्रथम ही था । इसके बाद हिन्दी और भारत की अन्य भाषाओं में लोक गीतों पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुये ।

22.04.1 गीतों का मूलाधार

लोक गीत हमारे सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक विकास के इतिहास प्रकट करने वाले होते हैं, इनका जन्म स्वाभाविक ही कहा जायेगा । आदि मानव के कण्ठ से जो विकृत भाव किसी अवसर पर प्रस्फुटित हुये होंगे उन्होंने ही धीरे -धीरे गीत का रूप ले लिया होगा । स्त्री -पुरुषों की समय-समय पर होने वाला मन : स्थितियों ने इनमें अपने प्रभाव के पुट दिए हैं । खेतों की हरियाली, कोयल की कूक, पपीहे की पुकार और बसंती सुषमा ने इनमें थिरकन, सिहरन और तड़पन भरी है । इनके स्वरों से बच्चे सोये व जागे, इनकी टेक पर स्त्रियां नाच उठी है । इसकी गूंज पर बिरही युवक का मन कसक उठा है, इनके प्रवाह में भोली अल्हड़ नव यौवना का मन बह गया है, इनकी तालों पर किसानों के हल

चले हैं । ये धरती के स्वाभाविक बोल है, ये वायु के उन्मुक्त झोंके हैं, ये समुद्र के शक्तिशाली ज्वार है, ये नदी के वेगयुक्त प्रवाह है ये चांद की शीतलता, सूर्य की तेजस्विता और तारों की स्वप्निल छांह लिये हुए हैं ।

लोकगीत न तो नया ही है और न पुराना ही । वह तो जंगलवृक्ष की भांति है जिसकी जड़े अतीत काल में गड़ी हुई हैं, किन्तु जिसमें अविराम गति से नई टहनियों, नये पक्षियों और नये फलों की उत्पत्ति होती है ।

22.04.2 गीतों का वर्गीकरण :

गीतों के वर्गीकरण की जब हम बात करते हैं तो सहज रूप से ध्यान आते हैं । ऋतुओं उत्सवों, संस्कारों, पारिवारिक, सम्बन्धों,व्यवहारों एवं मेलों से सम्बन्धित लोक गीत । हमारे जीवन में ऐसी अनेक स्थितियाँ आते हें जब हम आनन्द में झूम उठते है । ओर गाने लगते है । गीत जब सावन की घटायें भावनाऐं जागृत कर देती है । होली के रंग हमारे मन में रंगीनी भर देते हैं, विवाह के साथ बधाईयों ओर हास-परिहास की इच्छा उत्पन्न हो जाती है । इन गीतों को विभिन्न वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है । डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय ने इन लोग गीतों का विभाजन इस प्रकार किया है ।

संस्कारों की दृष्टि से

1. रसानुभूति की प्रणाली से
2. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से
3. विभिन्न जातियों के प्रकार से
4. क्रिया-गीत
5. विविध गीत

श्री श्याम परमार ने गीतों के भेद करते हुये उनको चार श्रेणियों का बताया है -

1. संस्कार विषयक
2. माहवारी गीत
3. सामाजिक ऐतिहासिक गीत
4. विविध

श्री रामनरेश त्रिपाठी ने ग्यारह श्रेणियों में वर्गीकरण किया है -

1. संस्कार सम्बन्धी गीत
2. चवकी और चरखे गीत
3. धर्म गीत
4. ऋतु सम्बन्धी गीत
5. खेती
6. भिखमंगी
7. मेले के गीत
8. जाति के गीत

9. वीर गाथा
10. गीत कथा
11. अनुभव के वचन

राजस्थानी लोक गीतों के विद्‌वान् संग्रहकर्ता तथा समालोचक प. सूर्यकरण पारीक ने लोग गीतों को उन्तीस भागों विभाजित किया है -

1. देवी देवताओं और पितरों के गीत
2. ऋतुओं के गीत
3. तीर्थों के गीत
4. व्रत-उपवास और त्यौहारों के गीत
5. संस्कारों के गीत
6. विवाह के गीत
7. भाई-बहिन के प्रेम के गीत
8. साली-सलहज के गीत
9. पति-पत्नी के प्रेम के गीत
10. पनिहारियों के गीत
11. प्रेम के गीत
12. चक्की पीसते समय के गीत
13. बालिकाओं के गीत
14. चरखे के गीत
15. प्रभाती गीत
16. हरजस-राधाकृष्ण के प्रेम के गीत
17. धमाले- होली के अवसर पर पुरुषों द्‌वारा गाये गीत
18. देश-प्रेम के गीत
19. राजकीय गीत
20. राज-दरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत
21. जम्मे के गीत-वीरों, सिद्ध पुरुषों, महात्माओं की स्मृति में रखे गये जागरण को 'जम्मा' कहते है ।
22. सिद्ध पुरुषों के गीत
23. (क) वीरों के गीत
    (ख) ऐतिहासिक गीत
24. (क) ग्वालों के गीत
    (ख) हास्य रस के गीत
25. पशु-पक्षी सम्बन्धित गीत
26. शान्त रस के गीत
27. गांवों के गीत (ग्राम-गीत)

28. नाट्य गीत

29. विविध

22.05 राजस्थानी गीतों की परम्परा

रंगो से भरपूर यह मरू प्रदेश, शौर्य, पराक्रम और बलिदान के लिये जितना विख्यात रहा है, उतना ही यहाँ के लोक गीतों के लिये भी प्रसिद्ध रहा है । मानव ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति अपने - अपने तरीके से सृष्टि के आरम्भ से की है । ये राजस्थानी लोग-गीत इतने ही प्राचीन है जितनी प्राचीन मरू प्रदेश की जनता ।

राजस्थानी लोकगीत उनके हृदय का स्वर और जनमानस की भावनाओं की संगीतमय अभिव्यक्ति है । इन गीतों में राजस्थान की संस्कृति, रीति रिवाज तथा संगीत मय इतिहास परिलक्षित होता है । लोक गीत आंचलिक संस्कृति के विद्यालय है । जैसे वेदों का कोई लेखक नहीं है उसी प्रकार पारम्परिक लोकगीत किसके लिखे हु ए हैं यह कहना मुश्किल है । लोक गीत सतत परम्पराओं से प्रचलित एवं पोषित होकर सदा जीवित रहते हैं । राजस्थान में कुछ जाति विशेष के गायकों द्वारा भी इनकी परम्परा गतिशील और अक्षुण रखी जाती है । लंगे, मांगणियार, भोपा- भोपी, कलावन्त, गंधर्व, राणा मीरासी, ढोली, ढाढी, नगारची, दमामी, जांगड़ आदि जातियों द्वारा लोक गीत गाये जाते हैं । पारम्परिक राजस्थानी लोक गीतों के प्रचलित नाम या शीर्षक उसके मूल परिचायक हैं जैसे पणिहारी, गौरबन्द व रसिया, सूवटियों, केसरियाबालम, काजीलयो, नीबूड़ों, कलाली, घाटी रो नगारो, एवं बधावों आदि ।

महिलायें, पुरुष व बच्चे लोक गीत के माध्यम से न केवल अपने हृदय के भावों को स्वर देते हैं बल्कि सारे वातावरण को स्वर रूपी गंगा में सराबोर कर देते हैं । राजाओं के रजवाड़ों से भी गीत निकले हैं उन्हें ' 'रजवाड़ी गीत '' कहा जाता है । इन गीतों मे शास्त्रीयता का पुट अधिक होता है । रजवाड़ी गीतों में कलाली, मूमल, पणिहारी, खुमाणाजी, रतन राणा, मारवाड़ का पूसा, बनडों, हजारी गुल रो फूल हिचकी तथा ओलू आदि स्वर और ताल में बद्ध गीत होते है । लोक गीत केवल पेशेवर गायकों या उस्तादों द्वारा ही गाये जाते हैं । ऐसा नहीं है यह गीत तो जन-जीवन में व्याप्त है । जन-मानस के मन मंदिर में समाये ये लोक-गीत सभी के द्वारा गाये जाते हैं ।

22.05.1 विभिन्न राजस्थानी गीत :

लोग गीतों के वर्गीकरण के अनुसार उदाहरणस्वरूप कुछ गीत उनके भावार्थ सहित प्रस्तुत कर रहे हैं ।

1. देवी-देवताओं एवं पितरों के गीत :

राजस्थान में विवाह-उत्सव का आरम्भ गणेश जी के 'नोतने' (न्योतने) से आरम्भ होता है । विवाह के कुछ दिन पूर्व विनायक जी की स्थापना की जाती है और गणेश जी का आवाहन किया जाता है, पूजा, अर्चना की जाती है ऐसे गीतों में भी श्रीगणपति से प्रार्थना की जाती है कि विवाह का मंगल कार्य या उत्सव निर्विघ्न सम्पूर्ण हो गीत इस प्रकार है ।

छाजे रे छाजे नौबत बाजे, म्हारे घर आणांद बधावो विनायक छाजे रे छाजे ।

कंवर लाडलड़ा री बिड़द उपाई, रणात भंवर सूं आवो विनायक छाजे रे छाजे । ।

चालो विनायक आंपा जोसी जीरै चाला, चोखा - लगन लिखावां विनायक छाजे रे छाजे ।

चालो विनायक सजना रे चालां, सुन्दर सी बनडी परणी जां विनायक छाजे रे छाजे ।

भावार्थ - मेरे घर के द्वार पर शहनाई, नगाड़े बज रहे हैं, हे गणेश जी! मेरे घर पर पधारें तथा आनन्द से कार्य साधे । हे गणपति ! लाड़ले कुंवर की कीर्ति बढ़ाना । हे गणेश ! अपन जोशी जी के घर चलें तथा विवाह के लिये शुभ - लग्न लिखा कर लावे । इसी प्रकार कंदोई, बजाजा तथा पनवाड़ी के बोल हैं (हे गणेश! बरात लेकर बनडी के घर चलेंगे तथा सुन्दर सी कन्या विवाह के घर लावेंगे)

2. ऋतुओं के गीत :

'बादली' राजस्थान का एक अत्यन्त लोकप्रिय गीत है, जो विशेषकर हाडौती, शेखावटी, जयपुर व मेवाड़ की ओर गाया जाता है ।

बादली बरसें क्यू नी ए, बीजली चमके क्यूं नी ए ।

म्हारा भंवर सारा महल में चम्पो सूखे ए । ।

चांद थारी चांदणी जी कई, सूती पलंग बिछाय ।

जद जागू जद एकली जी काई, मरू कटारी खाय । ।

बादली .....

काच करण रो ढोलियोजी काई, हिंगलू रंगी ईस ।

म्हें म्हारा राजन पोढस्यां जी कोई, रग ढोल्या ३ बीच । ।

बादली .....

गेरा फूल गुलाब रो जी कांई, मेल्यो सेंजां बीच ।

ज्यूं ज्यूं कलियां उघडेजी काई, त्यूं त्यूं बधती प्रीत । ।

बादली .....

इस प्रकार अन्तरे और जुड़ते जाते हैं ।

भावार्थ- वर्षा ऋतु के आरम्भ. में प्राय : औरतें बाग बगीचों में नदी-नालों अथवा तालाबों के किनारे तथा मेलों में एकत्रित होकर अत्यन्त मधुर स्वर से इसे गाती है और बादली का संकेत करती हुई एक विरहिणी कह रही है कि बादली रानी ! तुम क्यों नहीं बरस पड़ती हो और है बिजली तुम भी क्यों नहीं चमकती हो? मेरे प्राण प्यारे प्रियतम के हवा महल में चम्पा का पेड़ दिन-प्रतिदिन सूखा जा रहा है । आकाश में नित्य ही बादल छाए रहते हैं परन्तु जब वर्षा नहीं आती है और उस प्रगाढ़ प्रेम का घोतक वह चम्पा का पेड सूखता दिखाई पड़ता है तो उस विरहिणी का अपने प्रियतम की याद सताने लगती है । वह बिजली की चमक और बादलों की गड़-गड़ाहट के साथ घोर वर्षा का आह्वान करती हुई अपने प्रियतम की याद में खो जाती है ।

अलवर जिले में " आज बागा में ", रिमझिम हो रही जी आयो म्हारी मां को जायो वीर " गीत प्रचलित है ।

बीकानेर व जोधपुर विशेषकर मरुस्थल भाग में 'पपइया थारे बोलण री रितु आई ३..... गाया जाता है ।

3. तीर्थों के गीत :

तीर्थंकर आदि के गीत वहां के भगवान से सम्बन्धित पाये जाते हैं । जयपुर में प्रचलित गीत 'गोवर्धन को जाऊं मेरी बीर " गाया जाता है ।

4. त्यौहार के गीत :

गणगौर पूजन के समय स्त्रियां गीत गाती हैं-

गोरिये, गणगौर माता, खोल ए किवाड़ी
बायर ऊबी, धाने पूजण आली
पूजों ये पूजन्ता वाली, कांई वर मांगो,
कान कंवर सो बीरो मांगा, राइ सी भौजाई
जमवट जामी बाबल मांगा, राता देइ मायड़
बड़ो दुमालिक काको मांगा, चुडला वाली काकी
फूस उड़ावन फूफो मांगा, कूड़ों धोवण बुआ
काजलियों बहनाई मला, सदा सुहागण बहना ।

भावार्थ-ऐ गौरी मां पार्वती, अपने मंदिर के द्वार खोले हम तुम्हारी पूजने वाली बाहर खड़ी हैं । मां ने द्वार खोले और पूछा मांगो बालिकाओं क्या-क्या मांगती हो ? बालिकाओं ने कहा 'हमें कृष्ण जैसा भाई, रानी जैसी भोजाई, श्री सम्पन्न पिता तथा काका तथा देवी तुल्य मातु श्री, चूड़वाली सुहागिन काकी, फूस उड़ाने वाला कमजोर फूफा तथा कूड़ा ढ़ोने वाली मजबूर बुआ, श्याम वर्णित सुन्दर बहनोई तथा सुहागिन बहन, कृपया प्रदान करें ।

5. संस्कारों के गीत :

संस्कार विषयक गीत सोहर, चरूआ, चौक, मुण्डन, जनेऊ बारात की निकासी के गीत, घोड़ी टीका, विवाह, तिरागमन, देवस्थापन, पलने, मारनी, जन्मगांठ, छत्री स्थापना इत्यादि के गीत सम्मिलित होते हैं । जैसे 'उचलिये मंगरे री मेंहदी, जैसाणे री ढेल म्हारी मेहंदी रग राचणी । "

6. विवाह के गीत.

कन्या पक्ष के यहाँ बारात पहुँचती तब तोरण के अवसर पर आन्तरिक अल्हाद की लहर मन में दौड़ पड़ती है । इस मंगलदायक अवसर पर स्त्रियां सम्मिलित रूप से गाती हे -

आयो हे हेली, म्हारो लाड़लड़ौ अमराणौ, रूपनगर स्यूं राज ।
आज हरीयालों है बन्नो बागा पधारयो ए,
माली की लटक जुहारै ए, जुहारै म्हारो लाड़लड़ौ
अमराणों रूप नगर स्यूं राज । आयो है हेली.....
आज नखरालो हे बन्नो, तोरण पधारयो ए
तोरण तूरिये नचाया है, नचाया म्हारो लाडलड़ौ
अमराणों रूप नगर स्यूं राज । आयो है हेली.....
आज हरियालों हे बन्नो, चंवरयां पधारयों ए
चंवरयां में मंगल गाया, हे गाया म्हारो लाड़लड़ौं
अमराणो रूप नगर स्यूं राज । आयी हे हेली.....

धन - धन भाग बढै, सुहाग बनी रौ

गीत केसरियो वर पायो है, पायो म्हारो लाड़लड़ौ

अमराणो रूप नगर स्यूं राज, आयो हे हेली.....

भावार्थ- रूपनगर के अमर कोट लाडला बना सजधज कर आया है । घोड़ी .नचाता हुआ बन्ना तोरण द्वार पर आया, तब सासूजी ने उसे सराहा । बन्ना ससुराल के आंगन में आया । मेरी लाड़ली उस पर मोहित हो गई है । सुहागन बन्नी का सौभाग्य है कि उसे अच्छा वर मिला ।

7. भाई बहिन के प्रेम के गीत :

"बीरा " मधुर लोक गीत ढूंढाड़ अंचल में भात सम्पन्न होने के समय गाया जाता है । बहिन को अपने भाई पर पूरा विश्वास होता है तथा इसलिये वह साधिकार अपने भाई को स्नेह भरा निमन्त्रण देती है -

बीरा म्हारे रमा-झमा सू आज्यो जी

बीरा माथे ने मैमद ल्याजों, म्हारी रखडी रतन जड़द्योजी

बीरा काना में कुण्डल लाज्यों जी, म्हारा झुढना रतन जडाद्यों जी

सिरदार भतीजा सागे ल्याजोजी

बहिन राखी के त्यौहार पर भी भाई से विनती करती है । उसकी रक्षा की और उस पवित्र बन्धन के निभाने की ।

8. पनिहारियों के गीत

राजस्थान की विषम प्राकृतिक अवस्था में पानी की अपनी कीमत है और उससे जुड़ी अनेक सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियां हैं ।

"काली रे कलायण ऊमडी ए पणिहारी जी ए लो

मिरगा नैणी जी ए लो

छोटोड़ा छाटां रो बरसे मेह बाल्हा जी - 1

आज धराऊ दिसै धूंधलो ए पणिहारी जी ए लो.....

मोटोड़ा छांटा रो बरसो मेह बाल्हा जी ।

भर कुंवा भर बावड़ियां ए पणिहारी जी ए लो

इस प्रकार कई अन्तरे इसमें जोड़ते जाते हैं ।

भावार्थ -गीतों की रानी पणिहारी राजस्थानी लोग गीतों का सिरताज कही गई है भाषा व राग की सरलता, सरसता एवं मधुरता के कारण यह गीत इतना कर्ण प्रिय एवं लोक प्रिय हो चुका है कि राजस्थान के अलावा भारत के अन्य प्रांतों में भी गाया जाता है । यह गीत पूरा संवाद रूप में है । गीत में पणिहारी उस स्त्री का नाम है जिसका पति बचपन में उससे शादी करके बिन सुहागरात मनाये ही परदेश कमाने चला गया था ।

पणिहारी गीत का आरम्भ आकाश में छाई काली-काली घनघोर घटाओं के साथ छोटी -मोटी बूंदों की झिरमिर -झिरमिर वर्षा से होता है । उत्तरदिशा धुंधली हो गई है और अनवरत वर्षा के कारण ताल तलैया, नदी- नाले तथा कुएं जल से परिपूर्ण हो गये हैं । ऐसे समय में पणिहारी अपनी सात सहेलियों के साथ पनघट पर पानी भरने के लिये जाती हैं, मार्ग में पानी से भरी हुई बावड़ी को देखकर उसकी

सखि उससे पूछ बैठती हैं कि इन कुंए बावड़ी को किसने खुदवाया है ? पणिहारी इस प्रश्न का उत्तर देती है कि कुंए बावड़ी तो सास ने और विशाल सरोवर श्वसुर जी ने ।

9. पशु-पक्षी सम्बन्धी गीत :

राजस्थानी लोक गीतों मे पशु-पक्षियों का उल्लेख प्रचुरता से हुआ है तथा पक्षियों के माध्यम से नायिकाओं ने अपनी व्यथा समय-समय पर व्यक्त की है । 'मोरडी कुरडू -कुरडू कुरडाये रे ' ओर कुरजां, काग, कोयलड़ी, सुवरा, मैना, पपइया आदि का प्रयोग भी हुआ है । उदाहरणार्थ -

1. जादू डारो ने सुवा पर रतनारी मैना, जादू डारौ रे ।
2. अमराणो तो बोले सुवामोर, बागा में बोले छै काली कोयली री ।
3. मोरिया, आछूयो बोल्यो रे, ढलती रात में ।

10. सामाजिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं पर गीत :

समाज में घटने वाली विभिन्न घटनाओं पर आधारित एवं इतिहास की घटनाओं सम्बन्धित लोक गीत जैसे डूंगजी जवार जी लाखो फूलाणी, मुड़यों नहीं महेस, ' धुड़ल्यो ' इसी वर्ग में आते हैं । प्रसिद्ध वीर पुरुषों के शौर्य के गीत भी इसी क्रम में गिने जायेंगे । आसोप के ठाकुर महेश दास तथा मराठों के मध्य हुये युद्ध के समय का वर्णन प्रस्तुत लोक गीत में है -

कूंपा राजा कोटा गढ़ा रे किवाड़
ओ थाने रंग सौ कूंप नरेस
दिखणी आयो सज ढंलां, पृथ्वी भरांवण पेस,
कूंपा तो बिन कुण करें, म्हारी मदत्त महेस ।

इसी प्रकार दुर्गादास जी की वीरता - ' जूनी दिल्लड़ी तप साहजादा, बंका जोध बिलंबिया ' गीत में देखने को मिलती है । (हमने लोक साहित्य की इकाई में इन गीतों की सूची प्रदान की है ।)

11. मनोरंजनात्मक गीत

विभिन्न मानवीय चेष्टाओं, क्रीड़ाओं, ऋतुओं, मानव जीवन के सरस प्रसंगों, मेलों, पर्वों त्यौहारों होली आदि अवसरों पर गाये जाने वाले गीत आते हैं -

तीन पाव का चांवल राद्यां बांदरा खागा
तो सू भाग्यो जाय तो भाग घर में बांदरा आगा
रे बैरी पावण आगा ।''

22.06 गीत और संगीत पक्ष

लोक गीतों में साहित्यिक पक्ष, भावनात्मक मूल्य उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि उसका संगीत पक्ष । लोक गीत तीन या चार स्वरों पर ही आधारित होते हैं । राजस्थानी लोक गीत में 'मांड' अत्यधिक प्रचलित हैं । 'मांड' के साथ देस कामोद, बिलावल, खमाज, माच -खमाज, कुकुम -बिलावल, दुर्गा, मारू बिहाग, पहाड़ी, भैरवी, सिंधु भैरवी, यमन कल्याण, पीलू, तिलक कामोद, गौड़, मल्हार, सारंग, तोड़ी, काफी जंगला, वृन्दावनी सारंग, शिवरंजनी, झिझोटी-भूपाली, कलावती एवं शुद्ध कल्याण आदि रागों में गीत बहुतायत में गाये जाते हैं ।

27.07 गीतों की रस व्यंजना

रस सिद्धान्त के प्रथम आचार्य भरत मुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारि भावों के संयोग से रस की उत्पत्ति का उल्लेख किया है । काव्य में नौ स्थायी भावों के आधार पर नौ रसों का निर्धारण हुआ है । भरत ने आठ रसों को ही स्वीकार किया है, शान्त रस को स्वीकार नहीं किया है इसे विश्वनाथ, विराज, जगन्नाथ ने नाट्य रस के रूप में स्वीकार किया । रस की जो धारा काव्य में प्रवाहित होती है, वह लोक गीतों को भी अप्लावित किये रहती है । ग्रामीण स्त्री -पुरुषों के द्वारा निर्मित गीतों के मधुरिम संसार में रस का जो व्यापक विस्तार और संचार है, वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

श्रृंगार रस -

जन्म एवं विवाह के अवसर पर श्रृंगार प्रधान गीत होते हैं ।

हास्य रस -

जन्म, विवाह आदि हर्ष पूर्ण अवसरों पर अनेक मनोरंजक कार्यक्रम होते हैं । जिनमें हास्य, उल्लास के गीत गाये जाते हैं ।

करुण रस -

करुण रस की मार्मिक व्यंजना जीवन की असहनीय वेदना गीतों में ढलकर जीने का सहारा देती है, वही पीड़ा स्वरों में साकार होकर जिन्दगी को संभालती भी है । उन गीतों से मिलता है करुण रस ।

रौद्र रस -

मानव अपने प्रतिशोध का शेष युक्त प्रकाशन गीतों के माध्यम से करते हैं । अनेकों गीतों में सामाजिक अन्यायों एवं अनीतियों के प्रति लोक गीतकार के प्रतिकारात्मक भावों की अभिव्यक्ति हुई है ।

वीर रस -

लोक गीतों में वीर रस की अत्यधिक सुन्दर व्यंजना प्राप्त होती है । राजनीतिक उथल-पुथल के समय एवं देशभक्ति, कौमी एकता, पड़ौसी देशों के युद्ध के समय इस प्रकार के रस के गीत सुनने में अधिक आते हैं ।

भयानक रस -

ग्राम्य स्त्रियां सरल व सौम्य स्वभाव ये युक्त होती है । नारी का सुकोमल हृदय भयाघात की तीव्रता को सहन नहीं कर पाता । बादल की कड़क बिजली की चमक उनके हृदय को भय कम्पित कर देती है । लोक गीतों में सावन-भादवा की अंधेरी रात के भय की भीषणता सुनने में आती है ।

वीभत्स रस -

मन में उत्पन्न यह घृणा और वितृष्णा व्यावहारिक जगत में परिस्थितियों का प्रतिरोध पाकर गीतों के संसार में उन्मुक्त प्रकाश पाती है ।

अद्भुत रस -

ग्रामीण जनता अप्राकृतिक तत्वों के प्रति अटूट विश्वास रखती है । अस्वाभाविक और अप्राकृतिक के प्रति उत्पन्न यह अदम्य आकर्षण उसके जीवन में विस्मयोत्पादक तथ्यों का संचयन

करता है । यही विस्मय तत्व जब उसकी वाणी में बंध कर अभिव्यक्त होता है, तब अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि होती है ।

शान्त रस -

लोक गीतों में शान्त रस की प्रबल धारा प्रवाहित होती है । मन की यह विराममयी स्थिति लोक गीतों में स्थान - स्थान पर मुखरित हो उठती है ।

वात्सल्य रस -

जन्म संस्कार सम्बन्धित गीतों में वात्सल्य की अपूर्व शोभा दिखाई देती है ।

भक्ति रस -

देव विषयक गीत भक्ति भाव से गाये जाते हैं । सामान्य जनता पूर्ण रूप से आस्तिक होती है । लोक गीतों में विभिन्न देवी देवताओं के प्रति भक्तिमयी भावनाओं का प्रकाशन प्राप्त होता है ।

22.08 लोक संगीत के वाद्य तथा ताल

लोक गीतों में मुख्य रूप से तीन वस्तुओं का प्रयोग होता है -

1. गीत (शब्द योजना)
2. धुन (स्वर योजना)
3. वाद्य (स्वर तथा लय योजना)

लोक संगीत में वाद्यों के प्रयोग की अपनी महत्ता है । लोक गीतों एवं लोक नृत्यों में प्राण डालने वाले वाद्य ही होते हैं । काग में ढोलक, नौटंकी में नक्कारा 'तमाशा ' में ढोलकी, कहारों के गाने में हुडुक बज उठते हैं तब लय के मदमाते झोंके मनुष्य के अंग - अंग को झुमा देते हैं । सामान्यत : लोक संगीत के वाद्यों की समस्त सामग्री प्रकृति जन्य होती है । जिसमें मिट्टी, काढ तथा खाल मुख्य है किन्तु उनकी बनावट में कहीं -कहीं कारीगरी के अद्भुत नमूने देखने को मिलते हैं । लोक संगीत के वाद्यों को चार भागों में विभाजित किया गया है ।

1. धन वाद्य
2. अवनद्ध वाद्य
3. सुषिर वाद्य
4. तत वाद्य

1. धन वाद्य

(क) डाण्डिया : दो छोटी और मोटी अथवा पतली और लम्बी डाण्डिया आपस में बजाने के प्रयोग में लायी जाती हैं । जिससे ताल का आभास होता है । ये डाण्डिया मुख्य रूप से घूमर और गैर नृत्य के साथ संगति करने के काम में आती हैं ।

(ख) थाली और तसली : एक चक्राकार धातु निर्मित वाद्य जिस का एक भाग चपटा और किनारा सीधे ऊपर की ओर मुड़ा हो । यह कांसा या पीतल की पतली पर्त से बनी होती है तथा पतली और छोटी डण्डी से बजायी जाती है । बायी हाथ में लटका कर जो थाली बजती है, उसके एक भाग में डोरी बंधी रहती है । सीधे हाथ में डण्डी के द्वारा उस पर लय के साथ आघात किया जाता है । इस का प्रयोग ढोल बजाते समय अथवा नृत्य के साथ होता है एवं त्यौहारों के अवसरों पर भी इसका प्रयोग होता है ।

(ग) झांझ : दो बड़े चक्राकार चपटे टुकड़े जिन के मध्य भाग में छोटा सा गट्टा रहता है । ये आपस में टकरा कर बजाये जाते हैं । इनमें झनझनाहट भरी ध्वनि उत्पन्न होती है । इसे मुख्यतया ताशा और बड़े ढोल के साथ बजाया जाता है । इनका प्रयोग मेवाड़ के क्षेत्र में ग्रामीण बाजों के साथ भी किया जाता है ।

(घ) मंजीरा : दो छोटी, गहरी गोल पट्टियां, जो पीतल, जस्ता और ताँबा आदि के मिश्रण से बनी होती है । बजाने की सुविधा के लिये दोनों मंजीरों के किनारे का भाग पतला होता है । धातुओं के मिश्रण, प्रकार, वजन और आकार आदि पर मंजीरे की ध्वनि निर्भर रहती है । लोक संगीत रख भक्ति संगीत के साथ इन का विशेष प्रयोग होता है एक विशेष प्रकार का नृत्य 'तेरा ताली ' मंजीरों की सहायता से ही उत्पन्न हुआ ।

(ङ) करताल : दो चतुर्भुज आकार के लकड़ी के टुकड़े, जिनमें झंझनाहट करने वाले लटकन लगे रहते हैं । इसका एक भाग चारों उंगलियों में और दूसरा भाग अंगूठे में पहना जाता है तथा दोनों को आपस में टकरा कर बजाया जाता है । भिन्न -भिन्न लयों के प्रदर्शन के लिये भक्ति संगीत तथा कुछ नृत्यों में इसका प्रयोग होता है । राजस्थान में करताल, तन्दूरा और एकतारा के साथ प्रयोग किया जाता है ।

(च) घुरालियो : यह वाद्य छोटे बाँस की लकड़ी का बना होता है । इसमें एक हिलने वाली जीभी रहती है व धागे से बंधी रहती है, जिससे लय और ध्वनि का आभास होता है । इसका रूप व बजाने का ढंग मुरचंग से मिलता जुलता है । मुख्य रूप से गरासिया काल बेलिया और दूसरे घूमने वाले समुदायों द्वारा यह वाद्य बजाया जाता है ।

(छ) मुरका : यह लोहे की बनी होती है, जिस के अन्दर एक घेरे में हिलती हुई लोहे की जीभ लगी रहती है जो अन्त में बिच्छू के डंक की भांति ऊपर को उठी होती है । इसे बजाते समय बांये हाथ से पकड़कर होठों के नीचे कस कर दबाया जाता है । जब सीधे हाथ की उंगलियों उठी हुई जीभ पर झटका देती है । तब गले की फूंक के दबाव से यह बजती है । इसके द्वारा विभिन्न लयकारियां प्रदर्शित होती है । लोक गीतों के साथ इसको बजाया जाता हैं ।

2. अवनद्ध वाद्य

(क) चंग : लकड़ी का एक घेरा जो भेड़ की खाल से मढ़ा जाता है । लकड़ी की यह खाल मेथी की सहायता से मढ़ी जाती है । यह दोनों हाथों से बजायी जाती है । एक हाथ से घेरे के किनारे पर तथा दूसरे से इस के मध्य भाग में आघात किया जाता है । घेरे के ऊपर वाले हाथ में एक पतली डण्डी पकड़ कर बजाया जाता है तथा दूसरे हाथ से स्वतन्त्र रूप से वादन किया जाता है । कभी-कभी चंग का मध्य भाग कपड़े से मढ़ी हुई डण्डी से भी बजाया जाता है । कठिन बोलों को निकालने के लिये दूसरा व्यक्ति दो पतली और लम्बी डण्डियों से इस वाद्य पर आघात करता है ।

राजस्थान में होली के अवसर पर जो प्रेम गीत गाये जाते हैं । उन में संगीत करने के लिये चंग का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है ।

(ख) ढोलक : ढोलक आम, बीज।, शीशम, सागवान, नीम, जामुन और अढैसा की लकड़ी से बनती है । लकड़ी को अन्दर से पोला कर दिया जाता है । इसके दोनों मुख पर बकरे की खाल मढ़ी रहती है । यह खाल डोरियों द्वारा कसी जाती है । ढोलक का दाहिना मुख ऊंचे स्वर में तथा बाया

मुख मन्द स्वर में बोलता है । ढोलक का बायां मुख मोटी खाल में मढा जाता है तथा इस खाल में अन्दर से एक विशेष प्रकार का लेप किया जाता है ।

(ग) डफ : लोहे का एक गोल घेरा, जिस पर बकरे की खाल चढ़ी रहती है । यह खाल इस पर मढ़ली नहीं रहती, बल्कि चमड़े की बुद्धियों द्वारा बंधी रहती है । इसे एक हाथ से किनारे पर तथा दूसरे हाथ में डण्डी लेकर बजाया जाता हे ।

(घ) खंजरी : यह लकड़ी का छोटा, मोटा लगभग 6 इच के वृत का घेरा होता है जिसके एक और खाल मढ़ी रहती है । इसके लिये बकरी की खाल प्रयोग में लाते हैं । इसे केवल एक हाथ से बजाते हैं । कभी-कभी छपके घेरे में पीतल की छोटी झांझें भी लगायी जाती हैं । यह कालबेलियां और जोगियों की मण्डली द्वारा बजाया जाता है ।

(च) मादल : यह वाद्य भील और गरासिया जाति के व्यक्तियों द्वारा बजाया जाता है, यह मिट्टी के बेलन के आकार का होता है कुम्हार द्वारा बनाया जाता है। इस पर हिरण या बकरे की खाल मढ़ी जाती है । यह खाल सीधी-डोरियों द्वारा कसी जाती है । स्वर का ऊंचा और नीचा करने के लिये इसके दोनों मुखों पा आटा लगाया जाता है ।

(छ) दनामा : यह एक नगाड़ा जाति का वाद्य है । यह लोहे अथवा अन्य किसी धातु के मिश्रण से बना होता है । इसे भैंस की खाल से मढ़ा जाता है तथा चमड़े की पट्टियों के कस दिया जाता है । यह वाद्य मुख्य रूप से युद्ध के वाद्यों के साथ बजाया जाता था । ताल देने वाला मुख्य वाद्य था।

(ज) कुण्डी : यह मिट्टी का बना हुआ छोटा बरतन है । इस पर बकरे की खाल मढ़ी रहती है, जो चमड़े की बद्दियों से कसी रहती है । इसे दो छोटी डण्डियों से बजाया जाता है । मेवाड़ क्षेत्र के जोगियों में इस वाद्य का अत्यधिक प्रचार है । यह वाद्य संगीत के साथ-साथ स्वतंत्र रूप से भी बजाया जाता हे । जोगियों के पच पद नृत्य भी इसका प्रयोग होता है ।

(झ) डमरू : डमरू के मध्य भाग में चमड़े की एक डोरी बंधी रहती है जिस के दोनों किनारों पर पत्थर के टुकड़े बंधे रहते हैं । कलाई के संचालन से पत्थर के टुकड़े डमरू के दोनों ओर मढ़ी हुई पतली खाल पर स्वाभाविक रूप से प्रहार करते हैं ।

(प) ढोल : बेलन के आकार का वाद्य, जिसे लोहे की सीधी और चपटी परतों को आपस में जोड़कर बजाया जाता है । इस वाद्य पर बकरे की खाल मढ़ी रहती है । वाद्य को कसने के लिये कुण्डल अथवा गजरे का प्रयोग किया जाता है । इन कुण्डल से डोरी लगी रहती है । जिसमें पीतल के छल्ले लगे होते हैं । इनसे ढोल को कसा जाता है । इसका नर भाग डण्डी के द्वारा तथा मादा भाग हाथ से बजाया जाता है ।

(ब) नगाड़ा : इस वाद्य का आकार कटोरों के सामन होता है । जिनमें एक छोटा दूसरा बड़ा होता है । बड़ा तांबे का एवं छोटा लोहे का बना होता है । बड़े तांबे के कटोरे पर भैंस तथा छोटे पर ऊँट की खाल मढ़ी जाती है । यह खाल चमड़े की बद्दियों की सहायता से कसी जाती है । दो डण्डियों के द्वारा बजाया जाता है, बड़ा नगाड़ा नीचे स्वर में तथा छोटा नगाड़ा ऊंचे स्वर में मिलाया जाता है, स्वर की ऊंचाई के लिये इसे आग में सेंकते हैं ।

3. सुषिर वाद्य :

(क) अलगोजा : इसे बास अथवा लकड़ी को पोला करके बनाया जाता है । इसमें दो बांसुरी होती है । जिनमें चार -चार छिद्र होते हैं । जिन्हें एक साथ फूँका जाता है, इसमें दोनों हाथों का प्रयोग

होता है तथा प्रत्येक बांसुरी पर तीन-तीन उंगलियां रखी जाती है । इस वाद्य का स्वर बहुत ऊंचा होता है । फलत: इसके साथ गाने वाले भी बहुत ऊँचे स्वर से गाते हैं । अलवर के मेअ इसे गीतों के साथ बजाते हैं ।

(ख) सतारा : यह वाद्य मुख्य रूप से मरूस्थल प्रदेश की चरवाहा जातियों द्वारा बजाया जाता है । इसमें दो बांसुरी होती हैं तथा इन दोनों को लगातार एक साथ फूंका जाता है । विशेष प्रयोग के लिये दोनों बांसुरियों में छ: -छ : छिद्र होते हैं ।

(ग) सुरनई : यह शहनाई के ढंग का लोक वाद्य है एवं इसके कई रूप प्रचलित हैं। इसके ऊपरी भाग में छ: एक छोटी नली पर बंधे रहते हैं, जो वाद्य के मुख पर लगी रहती है । मुख्य रूप से भील जाति के जोगियों, राजस्थान के ढोलियों तथा जैसलमेर के लगाओ द्वारा बजाया जाता है ।

4. तंत वाद्य:

(क) रबाब : यह घट जाति का वाद्य है । लोक वाद्य के रूप में यह मुख्यत : दो प्रकार का होता है - गोल तुम्बे का और चतुर्भुज तुम्बे का । इसमें चार मुख्य तार होते हैं जो तात के बने होते हैं । एक लोहे का तार होता है । जिसे चिकारी की भांति प्रयोग किया जाता है । इसका जवा आक की लकड़ी से बना होता है ।

(ख) रावण हत्था : यह पाबूजी की कथा वाचकों द्वारा प्रयोग में लिया जाता है । यह वाद्य कमान से बजने वाला जिसमें दो मुख्य तार लगे रहते हैं, एक घोड़े की पूछ के बाल का बना होता है तथा दूसरा कुछ तारों को आपस में बट कर बनाया जाता है । ये तार षड्ज और पंचम में मिलते हैं । इस में तरब के तार भी होते हैं । जिनकी संख्या तीन, सात या ग्यारह होती है जो शुद्ध सप्तक में मिलाये जाते हैं । इसका तुम्बा नारियल के खोल से तथा डांड बांस की लकड़ी से बनती है । इसकी खूंटियां लकड़ी की होती है । नारियल के खोल के ऊपर झिल्ली रखी रहती है, जो मढ़ी नहीं जाती अपितु डोरी की सहायता से बंधी रहती है । कमान में घोड़े की पूंछ के बाल लगे रहते हैं । कमान और मुख्य तारों के लिये बिरोजा का प्रयोग किया जाता है ।

(ग) कमांयचा : राजस्थान की मंगा जाति द्वारा प्रयोग किया जाता है । इसकी पादन-क्रिया सारंगी से मिलती - जुलती है । इसकी कमान लम्बी होती है । तुम्बा गोल होता है । जिस पर पतली झिल्ली चढ़ी रहती है । घोड़ी इसकी बहुत चौड़ी होती है, जिस पर सभी प्रकार के तार रखे रहते हैं । कमान सभी तारों पर घूमती है । मुख्य तीन तार तांत के होते हैं जो सा, सा, प में मिलाये जाते हैं । नौ तरंगे घ, नि, सा, रे, ग, म, प, ध, नि में मिलायी जाती है । चार बड़ी तरफें सा, र, ग, म में मिलायी जाती है ।

लोक गीतों के साथ बजने वाली ताले.

गीतों में लय ही आत्मा है । लोक गीतों में जो ताले प्रयुक्त हुई है उनके पीछे कोई शास्त्र नहीं है । जिस तरह लोक धुनों से रागों की सृष्टि हुई है । उसी तरह लोक गीतों की तालों में शास्त्रीय ताले विकसित हुई है । 'कहरवा ' एवं 'दादरा ' सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली ताले हैं । व्यावसायिक गीतों में दीपचन्दी, झूमरा और रूपक विशेष रूप से प्रयुक्त होते हैं ।

22.09 इकाई सारांश

राजस्थान का लोक संगीत जीवन के हर पहलू से जुड़ा हुआ लयात्मक संगीत है । लोक जैसा कि शब्द से ही ज्ञात होता है । 'जन ' से जुड़ा या उनके ही सहज एस सरल भावों की संगीतात्मक अभिव्यक्ति लोग गीत के रूप में सामने आई है । समय के साथ-साथ लोक गीत अपने विकसित एवं परिष्कृत रूप से प्रस्तुत होने लगा । लेकिन आरम्भ से लोक गीतों में शब्द योजना, स्वर योजना और लय योजना का महत्त्व बना रहा । विशेषताएं अनेक रही जैसे वैयक्तिकता का अभाव, मौखिक परम्परा. लयात्मक अभिव्यक्ति, पुनरावृत्ति. प्रश्नोत्तर प्रणाली, संख्याओं का प्रयोग, निरर्थक शब्द योजना, वस्तु नाम गणना और अलंकारिकता स्वाभाविकता आदि । लोक -गीत संस्कारों से सम्बन्धित, ऋतुओं, मेले, देवी -देवताओं, देश -प्रेम, हास रस, पणिहारी, खेती बाड़ी आदि से सम्बन्धित प्राप्त होते हैं । इस सभी में साहित्य पक्ष के साथ-साथ संगीत पक्ष अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इन गीतों में भाव पक्ष प्रबल होने के कारण उन भावों से सम्बन्धित रस प्राप्त होता है ।

लोक संगीत के साथ प्रयुक्त होने वाले वाद्य भी अपनी विशेषता रखते हैं, उन सभी में 'कहरवा ' एवं दादरा ताल अधिकतर बजाई जाती है ।

22.10 अभ्यासार्थ प्रश्न वे

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये ।

1. लोक गीत से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये ।
2. लोक गीत की उत्पत्ति की विवेचना कीजिये ।
3. लोक गीत का विकास व्यक्ति के विकास के साथ-साथ हुआ । स्पष्ट कीजिये ।
4. क्या लोक गीतों द्वारा रस की प्राप्ति सम्भव है ।

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये. -

1. लोक गीतों का मूलाधार एवं व्यापकता पर प्रकाश डालिये ।
2. लोक गीतों के वर्गीकरण पर आलोचनात्मक विचार प्रस्तुत कीजिये ।
3. लोक गीत और रागों का सम्बंध पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिये ।
4. लोक गीतों के साथ प्रयुक्त होने वाले विभिन्न वाद्यों का विवरण देते हुये उनमें बजने वाली ताले बताईये ।

इकाई सं. 23 "राजस्थान के संगीतज्ञ"

इकाई संरचना

23.01 उद्देश्य
23.02 प्रस्तावना
23.03 संगीत घराने
23.04 राजस्थान मई हवेली संगीत व गायक वादक
23.05 जयपुर अत्रोली घराना
23.06 प्रदेश के प्रमुख गायक वादक
23.07 प्रदेश के कुछ विशिष्ट वादक
23.08 राजस्थान के लोक संगीत की पृष्ठभूमि
23.09 लोक संगीत की परम्पराएं
23.10 लोक गायन के कलाकार
23.11 इकाई सारांश
23.12 शब्दावली
23.13 अभ्यासार्थ अर्थ

23.01 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य राजस्थान के संगीतज्ञों के बारे में जानकारी प्रस्तुत करना है । जिस प्रकार चित्र के बिना चित्रकार का परिचय देना अधूरा सा लगता है उसी प्रकार संगीत की सामान्य संक्षिप्त जानकारी के बिना संगीतज्ञों की चर्चा करना अधिक अर्थपूर्ण नहीं है अत : इस इकाई के माध्यम से राजस्थान की सांगीतिकार परम्पराओं का उल्लेख करते हुए संगीतज्ञों का परिचय दिया गया है । राजस्थान का लोक-संगीत अत्यन्त समृद्ध है । यहां विख्यात शास्त्रीय संगीतकार विभिन्न राजदरबारों के राज्याश्रय में पनपे ओर फलस्वरूप प्रदेश में शास्त्रीय संगीतज्ञों का जमावड़ा रहा । इस इकाई में साथ - साथ प्रदेश के प्रसिद्ध संगीतज्ञों का परिचय भी कराया गया है ।

23.02 प्रस्तावना

राजस्थान वैसे तो रेगिस्तानी व शुष्क इलाका कहलाता है किन्तु यहाँ संगीत की सरस धारा शुरु से बह रही है । आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि यहां न केवल लोक संगीत वरन् शास्त्रीय संगीत की समृद्ध परम्परायें पनपी हैं । इनमें विभिन्न रजवाड़ों द्वारा स्थापित गुणी जन खानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । जिनमें देश के चोटी के कलाकार बड़ी-बड़ी तनख्वाहें व सम्मान पाते थे । अधिकांश शासक संगीत प्रिय होते थे और कुछ तो स्वयं संगीत-साधना करते थे । इनके समय में कुछ अच्छे ख्यालों की रचनायें हुई जो आज भी (मारवाड़ी भाषा में निबद्ध) सर्वत्र गाई जाती है ।

राजस्थान के विभिन्न रजवाडों में पोथीखाना, सूरतखाना व नक्कारखाना की भांति गुणीजन खाना, तालीम खाना या संगीत शाला की व्यवस्था थी । इनमें देश के विख्यात संगीतज्ञ व संगतकार आदि वेतन-भोगी कलाकार कार्यरत थे । राजस्थान में प्रमुख रूप से जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, उणियारा, टोंक, अलवर, किशनगढ़ व अन्य रियासतों व ठिकानों में गुणीजन खाने थे ।

राजस्थान में महान संगीतज्ञों के स्थाई निवास के कारण यहाँ संगीत की दो शैलियों का इतना विकास हुआ कि उनको 'घराना' का दर्जा मिला । इनमें एक है ध्रुवपद गायकी का डागर घराना और दूसरा ख्याल गायकी का जयपुर घराना जो जयपुर अत्रोली घराना के नाम से जाना जाता है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संगीत कला राज्याश्रय से मुक्त हुई किन्तु सौभाग्य से यह घर-घर में फैल गई । अच्छे संगीतज्ञों ने गोष्ठियों व संगीत सम्मेलनों में आम जनता के लिये गाना शुरु कर दिया । शिक्षा में संगीत को स्थान मिला । सरकार व गैर सरकारी व स्वतंत्र संगीत विद्यालयों में संगीत शिक्षा के प्रावधान के कारण यह विद्या काफी लोकप्रिय हुई । विद्यालयों व महाविद्यालयों द्वारा प्रदत्त संगीत की उपाधियों के कारण आज प्रदेश में असंख्य संगीत शिक्षक व प्राध्यापक संगीत का अध्यापन व प्रचार कर रहे हैं । यह भी महत्वपूर्ण तथ्य है कि सुगम-संगीत व फिल्मी संगीत जैसी लोकप्रियता तो शास्त्रीय संगीत को प्राप्त नहीं है किन्तु प्रदेश में आज भी अच्छे शास्त्रीय संगीतज्ञों की कमी नहीं है । इनके द्वारा शिक्षित शिष्य आगे की पीढ़ी को तैयार कर रहे है ।

23.03 संगीत घराने

डागर घराना व ध्रुपद-गायक

भारत के इतिहास के मध्यकाल, विशेष रूप से अकबर के शासनकाल (16 वीं - 21 वीं) में संगीत विद्या का विशेष महत्व था । तानसेन अकबर के नौ रत्नों में से एक थे एवं वे जो गायकी गाया करते थे उसे ध्रुवपद या 'ध्रुपद' कहा जाता था । ध्रुपद अब भी गाया जाता है किन्तु अपेक्षाकृत 'ख्याल-गायन' ही अधिक प्रचलित है ।

ध्रुपद की चार बानियां प्रसिद्ध थी यथा खंडार नोहर, गोबरहार व डागर । अब अन्य बानियों के गायक बहुत कम हैं किन्तु राजस्थान को यह श्रेय जाता है कि यहाँ 'डागर' बानी न केवल सुरक्षित रही वरन पनपी भी और आज देश में जितने ध्रुपद गायक हैं उनमें अधिकांश 'डागर' ही हैं । राजस्थान मे डागर घराने के वर्चस्व का श्रेय बाबा बहराम खां को जाता है जो वैसे तो सहारनपुर के मूल निवासी थे किन्तु उनकी कार्यस्थली जयपुर रही और उनकी दीर्घायु का अधिकांश समय जयपुर में बीता ।

अनेक मतमतान्तर के बावजूद डागर घराने के असली जन्मदाता बाबा बहराम खां माने जाते हैं । बाबा सम्पूर्ण विद्वान थे । वे उत्कृष्ट ध्रुपद गायक, शिक्षक, विचारक व टीकाकार थे । बाबा की मृत्यु जयपुर में हुई । यहां उनका आश्रम बहराम खां भवन ' या 'बहराम खां की चौखट' के नाम से जाना जाता है ।

राजस्थान के प्रसिद्ध ध्रुपद गायक

जाकिरुद्दीन खां- अलाबंदे खां

ध्रुपद के डागर घराने के उन्नायक बहराम खां के' बाद जिन्होंने सर्वाधिक ख्याति अर्जित की उनके नाम हैं जाकिरुद्दीन खां और अलाबंदे खां । इन दोनों भाइयों की संगीत शिक्षा बाबा बहराम खां की देखरेख में हुई जो इनको रात-रात भर रियाज करवाते थे । जाकिरुद्दीन खां की ख्याति सुनकर उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह ने दोनों भाईयों को अपने दरबार में रख लिया । बाद में अलाबंदे खां अलवर नरेश के दरबार में चले गये । दोनों भाइयों का विवाह उस समय के विख्यात जानकार बंदे अली खां की पुत्रियों से हुआ था । जाकिरुद्दीन खां के पुत्र का नाम जियाउद्दीन खां था अलाबंदे खां के चार पुत्र हुए यथा नसीरुद्दीन, रहीमुद्दीन, इमामुद्दीन और हुसैनीद्दीन । जाकिरुद्दीन खां व अलाबंदे खां ने समस्त

भारत में अपने गायकी की धूम मचा दी थी । प्रसिद्ध विद्वान पंडित भातखंडे को भी मानना पड़ा कि विभिन्न रागों में प्रयुक्त होने वाले श्रुतियों का सही प्रदर्शन केवल वे दोनों भाई ही कर सकते हैं ।

जियाउद्दीन खां

आप जाकिरुद्दीन खां के पुत्र व उदयपुर राज्य के दरबारी गायक थे । ये श्रेष्ठ गायक व संस्कृत के विद्वान थे । इनका देहान्त सन् 1946 में हुआ । इनके चार पुत्र थे ।

जिया मोइनुद्दीन खां

आप जियाउद्दीन खां के ज्येष्ठ पुत्र थे । इन्होंने रुद्रवीणा वादक के रूप में अद्भुत ख्याति अर्जित की । इन्होंने विदेशों में भी अपने वादन की धाक जमाई । बाद में आप अमेरिका में ही बस गए । इन्होंने अनेक शिष्य तैयार । ।

फरीउद्दीन खां

जियाउद्दीन खां के पुत्र फरीउद्दीन खां ने अपने संगीत की तालीम पहले पिता से व बाद में बड़े भाई बीनकार मुइनुद्दीन खा से प्राप्त की । इनका जन्म उदयपुर में हुआ था । किन्तु बाद में आप बाबा अलाउद्दीन ध्रुपद केन्द्र भोपाल के निदेशक पद पर रहे ।

रहीमुद्दीन खां

आप अलाबंदे खां के पुत्र व उस्ताद जाकिरुद्दीन के भतीजे थे । आप इंदौर में दरबारी संगीतज्ञ रहे । आप अद्वितीय गायक थे । भारत सरकार ने आपको 'पद्मभूषण' से विभूषित किया ।

नसीर-मोइनुद्दीन- अमीनुद्दीन खां

ये दोनों भाई नसीरुद्दीन खा के पुत्र थे । आपने अपने पिता, रियाजुद्दीन खां व जियाउद्दीन खां से तामील ली । दोनों निवासियों भाइयों ने देश-विदेश में बड़ा नाम कमाया ।

एन. जहीरुद्दीन खां व एन. फैयाजुद्दीन खां

नसीरुद्दीन खां के इन दोनों पुत्रों की तालीम भाद्र एन. मोइनुद्दीन और अमीनुद्दीन डागर द्वारा सम्पन्न हुई । इन दोनों कलाकारों रूप को विकसित किया एवं अपनी कला से बुलंदगी तक पहुँचाया । इन्होंने अपने अंग्रेजों की जुगलबंदी पद्धति का सफल प्रयोग किया अत : ये डागर बन्धुओं के नाम से विख्यात हुए ।

रहीम-फहीमुद्दीन

आप रहीमुद्दीन खां के इकलौते पुत्र थे । आपने नसीरुद्दीन खां, जियाउद्दीन खां व इमामुद्दीन खां से विद्या प्राप्त की । आपने देश -विदेश में अनेक सम्मेलनों में भाग लिया ।

डागर घराने के नसीरुद्दीन खां, रियाजुद्दीन खां व अन्य अनेक कलाकारों ने अपना-अपना योगदान दिया है । इनके अतिरिक्त लक्ष्मण भट्ट तैंलग व सइदुद्दीन खां आदि भी ध्रुपद के जाने माने गायक हैं ।

23.04 राजस्थान में हवेली संगीत व गायक -वादक

भारत प्राचीनकाल से ही ईश्वरोपासना का केन्द्र रहा है । यहां देवस्थानों में गायन -वादन व नृत्य की परम्परा रही है । राजस्थान के मंदिरों में भी संगीत की धारा किसी न किसी रूप में आज भी प्रवाहित हो रही है । मन्दिरों में देवमूर्ति के समक्ष, उनकी सेवा स्वरूप गायक भजन गाते हुए दृष्टि गोचर होंगे । इसी प्रकार परिवार व मोहल्लों में भी रात्रि जागरण या कीर्तन आदि का आयोजन होता

रहता है जिसमें गृहस्थ पुरुष व महिलायें श्रद्धापूर्वक गायन-वादन से प्रभु को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं ।

वैष्णव मन्दिरों में शास्त्रीय गायन की एक समृद्ध परम्परा मध्यकाल से चली आ रही है । अब यह हवेली संगीत' के नाम से जानी जाती है तथा यह पुष्टिमार्गीय मंदिरों तक सीमित है । इसमें गायक ' ध्रुपद ' अंग की 'विष्णुपद शैली' में अष्टयाम की सेवा के पद गाते हैं । इनमें साथ ध्रुपद की भांति पखावज की संगत होती है । श्रीमद् वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित एवं विट्ठलदास द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्गीय संगीत के कुछ पीठ राजस्थान में विद्यमान हैं जिनमें श्रीनाथ द्वारा व कांकरोली प्रसिद्ध हैं । इस परम्परा के गायक विशिष्ट पदों का गायन शास्त्रीय रागों में शास्त्रीय ढंग से प्रस्तुत करते हैं तथा अन्त में झांझ मंजीरों की संगत में कीर्तन अंग कर गायन प्रस्तुत करते हैं ।

संगीत की भक्ति धारा में राजस्थान के अनेक शासकों ने भी योगदान दिया । इनमें किशनगढ़ के सांवतसिंह हैं जिन्होंने राजपाट छोड़ दिया एवं नागरीदास के नाम से भक्त कवि गायक के रूप में प्रसिद्ध हुए । कोटा के भीमसिंह ने अपना नाम ही कृष्णदास रख लिया । जोधपुर के जसवंतसिंह ने अपना नामकरण 'ब्रजराज' कर लिया ।

मुस्लिम शासकों से आतंकित होने की स्थिति में ब्रज क्षेत्र से जब विग्रह राजस्थान व गुजरात में सुरक्षित स्थानों पर लाये गये तब जिन भवनों में इन्हें विराजमान किया गया उसे 'हवेली' कहा गया । यहाँ भक्तों ने संगीत की धारा बहाई । गायक 'कीर्तनियां' व सहयोगी 'झालरिया ' कहलाए । पुष्टि मार्गीय सम्प्रदाय की सेवा प्रणाली में संगीत का स्थान प्रमुख होने के कारण राजस्थान के अनेक मन्दिरों में सैकड़ों संगीतज्ञों ने अपना योगदान किया । पुष्टिमार्गीय परम्परा से हटकर प्रदेश के अन्य नगरों के मुख्य मंदिरों में भी कीर्तन की व्यवस्था है एवं यहां भी भक्त गायकों का जमावड़ा रहता है ।

साधु संतों के गेय पदों को 'वाणी' या 'भजन' कहते हैं । विभिन्न सम्प्रदायों की अपनी-अपनी भजन गायन परम्परायें हैं, जैसे कबीर बाणी, दादू, वाणी, सिद्ध, नाथ व अन्य लोक देवताओं के भजन भी श्रद्धालु भक्त तन्मयता से जागरण या अन्य अवसरों पर गाते हैं । भोपा-भोपी भी अपने इष्ट की विरुदावलियां गाते हैं । इस प्रकार प्रदेश में हवेली संगीत के गायकों, गैर पेशेवर भक्त गायकों व गृहणियों द्वारा भजन गायन परम्परा के कलाकारों का अपना विशिष्ट स्थान है । -

23.05 जयपुर-अत्रोली घराना -

उत्तर प्रदेश के अतरोली (अत्रोली) स्थान में कभी बड़े-बड़े संगीतज्ञ हुए । उनमें से अनेक गवैये राजस्थान की रियासतों में आ गए जहां वे राज्याश्रय में आजीवन ससम्मान रहे । इनमें से अधिकांश जोधपुर राज्य या उनियारा ठिकाणें में स्थापित हुए । जोधपुर नरेश मानसिंह के समय में अत्रोली के प्रसिद्ध गवैयों में करीमबक्श, जहूर खां, हक्कानी बक्श, इमामबक्श,, भूपत खां, गुलाम खां व दौलत खां प्रमुख थे । उनियारा में प्रस्थापित हुए थे टुल्लू खां, करीब बक्ष, जहांगीर खां व ख्वाजा अहमद खां । ख्वाजा अहमद खां के सुपुत्र अल्लादिया खां ने संगीत में बहुत नाम कमाया । ये उनियारा (जयपुर) से निकल कर महाराष्ट्र में जा बसे । इन्हीं की ख्याति के कारण संगीत जगत में 'जयपुर- अत्रोली घराना ' प्रसिद्ध हुए ।

उस्ताद अल्लादिया खां

आपका जन्म सन् 1855 में उणियारा (जयपुर) में हुआ । संगीत इन्हें विरासत में मिला । संगीत की तालीम पहले पिता ख्वाजा अहमद खां से व बाद में जुगनू खां व चिम्मन खां से मिली । बचपन में इनका समय टोंक, बूंदी, उदयपुर, जयपुर व जोधपुर में बीता । फिर कुछ समय बड़ौदा में रहे और बाद का समय बम्बई व कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में बीता।

अल्लादिया खां का कार्यक्षेत्र महाराष्ट्र रहा । उन्होंने वहा अनेक शिष्य तैयार किए जिन्होंने संगीत में बहुत नाम कमाया। उनके सुपुत्र भूर्जी खां बम्बई में अपने पिता व घराने का नाम रोशन कर रहे हैं । बम्बई में आपको 'माउण्ट एवरेस्ट ऑफ म्यूजिक' उपाधि से विभूषित किया गया । राजस्थान के छोटे से कस्बे उणियारा में जन्मे खां साहब ने इतनी ख्याति अर्जित की कि उनके निधन के बाद उनके प्रशंसकों ने कोल्हापुर में देवल क्लब के सामने पत्थर की मूर्ति स्थापित की तथा उस चौक का नाम ' अल्लादिया खां चौक ' रखा । खा साहब के शिष्यों में वामनराव, केसर बाई, मोधू बाई व मल्लिकार्जुन मसूर के नाम प्रमुख हैं ।

मेवाती घराना व गायक पंडित जसराज

जोधपुर नरेश जसवंत सिंह के शासन काल में नजीर खां दरबारी गायक थे । तब पंडित शिवप्रसाद अच्छे तबला वादक थे । उन्होंने अपने दो पुत्रों चिमनलाल व नाथूलाल को नजीर खां का शार्गिद बनाया । अपने भाई चिमनलाल की असामयिक मृत्यु के बाद नाथूलाल ने भी गाना छोड़ दिया किन्तु अपनी समस्त विद्या अपने भानजे मोतीराम को दी । मोतीराम ने अपने भाई ज्योतिराम को संगीत सिखाया । वे ज्योति-मोती के नाम से प्रसिद्ध हुए । पंडित मोतीराम के चार पुत्र हुए मणिराम, प्रतापनारायण, जसराज व राजाराम । पंडित जसराज आज देश के एक शीर्षस्थ गायक के रूप में लोकप्रिय हैं।

23.06 प्रदेश के प्रमुख गायक-वादक

जयपुर का भट्ट परिवार व संगीत में योगदान जयपुर के महाराज रामसिंह के समय खुर्जा निवासी रेवती नंदन यहाँ आए थे । इनके पुत्र बंशीधर यशस्वी संगीतज्ञ हुए हैं । तत्कालीन महाराजा माधोसिंह इनके गायन से अत्यन्त प्रभावित थे । उन्होंने बंशीधर को 'स्वर शिरोमणि ' की उपाधि से विभूषित किया । ये जयपुर तमाशा शैली के प्रतिष्ठाता थे तथा कुशल वाग्गेयकार थे । उनके रचे ख्याल व नाटक आज भी ब्रह्मपुरी के तमाशों में मंचित होते हैं ।

फूलजी भट्ट

आप बंशीधर के प्रपौत्र व बृजपाल के सुपुत्र थे । इनका गायन बहुत प्रभावशाली होता था । इन्होंने देश के प्रसिद्ध नगरों में अपने गायन का प्रदर्शन किया । देश के अनेक नामी गवैये भी आपका लोहा मानते थे । जयपुर के संगीत व तमाशा शैली को बढ़ावा देकर अपना बहुमूल्य योगदान देने में भट्ट परिवार के मन्नूजी भट्ट व गोपी कृष्ण भट्ट के नाम उल्लेखनीय हैं । इनके अतिरिक्त गोकुल चन्द्र भट्ट व उनके पुत्र लक्ष्मण भट्ट ने भी जयपुर में शास्त्रीय संगीत परम्परा को समृद्ध करने में योगदान दिया । जयपुर के एक अन्य भट्ट परिवार ने संगीत में काफी योगदान दिया है । इनमें मनमोहन भट्ट व उनकी धर्म पत्नी चन्द्रकला भट्ट के नाम अग्रणी हैं । इनके परिवार में अनेक संगीतज्ञ हैं । किन्तु विशेष हैं |

पंडित शशिमोहन भट्ट

अपने पिता श्री मनमोहन भट्ट से संगीत शिक्षा प्राप्त की । बाद मे विख्यात सितार वादक पंडित रविशंकर से सितार सीखा। उन्होंने अनेक शिष्य तैयार किए जिनमें भगिनी मंजु, भाई विश्वमोहन भट्ट व पुत्र कृष्ण मोहन भट्ट के नाम उल्लेखनीय

पंडित विश्वमोहन भट्ट

आप मनमोहन भट्ट के सुपुत्र हैं । आपने पहले अपने भाता शशिमोहन भट्ट से व बाद में पंडित रविशंकर से शिक्षा प्राप्त की । आपने विदेशी वाद्य गिटार बजाने में विश्वस्तर की ख्याति प्राप्त की है । आपने गिटार में कुछ परिवर्तन करके इसे नया रूप दिया और उस वाद्य का नाम 'मोहन वीणा ' रखा । आपने अनेक देशों में अपने कार्यक्रम दिए हैं । पाश्चात्य के गिटार वादक राई कूडर के साथ की गई जुगलबंदी की रिकार्ड के कारण आप विश्व प्रसिद्ध ग्रेमी अवार्ड से सम्मानित किए गए हैं । राजस्थान के संगीतज्ञों में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित करने वालों में आप अग्रणी हैं । आप अब एक नए वाद्य का निर्माण कर रहे हैं और उसे 'विश्व वीणा' का नाम दे रहे हैं ।

पुराने संगीतज्ञ जिन्होंने प्रदेश व प्रदेश से बाहर नाम कमाया उनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं : -

लक्ष्णम प्रसाद जयपुर वाले, गिरधर प्रसाद, खेमचन्द प्रकाश, जमाल सेन, शंभू सेन, अफजल हुसैन, गणपत लाल डांगी, अब्दुल कादर खा, हुकमदास वैष्णव, सुखदेव प्रसाद, मणिराम, रामदास कीर्तनकार, चेचकलाल, भरत व्यास, दानसिंह, शंकर- शिल्प शंभू आदि ।

गायक (जाने माने शास्त्रीय गायक)

पंडित ब्रह्मानंद गोस्वामी

आप 1947 मे सिंध से आकर जयपुर बस गए । आप श्रेष्ठ गायक थे । आपने जयपुर स्थित राजस्थान संगीत संस्थान में प्रिंसिपल के पद पर सराहनीय कार्य किया ।

हुकमचन्द वैष्णव

आप उस्ताद आशिक अली व पंडित भीषमदेव वेदी के शिष्य थे । कई स्थानों पर आपने अपने कार्यक्रम दिए किन्तु मुख्य कार्यक्षेत्र जोधपुर रहा । राजेन्द्र वैष्णव इनके प्रमुख शिष्य थे ।

पंडित जयचन्द शर्मा

आप बीकानेर निवासी हैं तथा राज्य के वरिष्ठ संगीतज्ञों में से हैं । आपने संगीत विषयों पर अनेक लेख व ग्रंथ लिखे हैं । आप बीकानेर में 'संगीत संस्थान' के अधिष्ठाता हैं ।

देवदत्त नादमूर्ति

आपने औंकारनाथ ठाकुर से संगीत शिक्षा ली । आपको तथा पन्नालाल पीयूष को उदयपुर (मेवाड़) में शास्त्रीय संगीत के प्रचार का श्रेय जाता है ।

गोविन्दराव राजूरकर

आप ग्वालियर घराने के प्रतिष्ठित गायक व शिक्षक थे । वे अच्छे बंदिशकार भी थे । आपने कई वर्षों तक जयपुर व अजमेर में संगीत के शिक्षण का स्तुत्य कार्य किया ।

बी एन. क्षीरसागर

आप श्रेष्ठ संगीतज्ञ हैं । आप ग्वालियर घराने व गांधर्व महाविद्यालय मंडल से जुड़े रहे हैं । आपने संगीत कला केन्द्र जोधपुर में प्रिंसिपल के पद पर सराहनीय कार्य किया । राज. संगीत नाटक अकादमी ने आपको फैलोशिप प्रदान की ।

लीलावती अडसुले

आपने बी. आर. देवधर, उस्ताद कादर खां व ब्रह्मानंद गोस्वामी से संगीत शिक्षा ग्रहण की । आपने कोटा व जयपुर में संगीत व्याख्याता के रूप में अनेक वर्षों तक कार्य किया ।

पंडित आसकरण शर्मा

आपको शिक्षा संगीत पंडित और पिता गिरधर जी से मिली । आप सुविख्यात गायक (मेवाती घराना) के पंडित मणिराम के दामाद हैं । पंडितजी ने भी आपको शिक्षा दी । आपने 1952 के बाद अनेक वर्षों तक राजस्थान में जोधपुर, गंगानगर व जयपुर में संगीत की सेवाएं दी ।

आर.सी.नाडकर्णी

आप ग्वालियर के गायक हैं किन्तु आपने लगभग 35 वर्षों तक वनस्थली विद्यापीठ में शिक्षण कार्य किया ।

इन गायकों के अतिरिक्त कई अन्य गवैयों ने राजस्थान में अपने संगीत से अपना योगदान दिया है । उन सभी का विवरण देना संभव नहीं है किन्तु उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता ।

23.07 प्रदेश के कुछ विशिष्ट वादक

वीणा वादक

आजकल वीणा वादन के बहुत कम कलाकार रह गए हैं किन्तु पहले (ध्रुपद-युग) के प्रमुख वीणा वादकों के नाम इस प्रकार हैं । राजा समोखन सिंह, मिश्री सिंह (किशनगढ़), रज्जब अली खां (जयपुर), मन्नालाल (कांकरोली) सादिक अली खां (अलवर) ।

पखावज वादक

पखावज मूल रूप से ध्रुपद या वीणा वादकों के साथ बजने वाला वाद्य हैं। इसका भी प्रचलन अब कम हो गया है । प्रदेश के कुछ पखावज वादकों के नाम हैं : -

चतुर्भुज, घनश्यामलाल, पुरुषोत्तमदास, मूलचंद कुमावत (नाथद्वारा) पंडित जगन्नाथ प्रसाद (जयपुर) व प्रकाश कुमावत।

सारंगी वादक

रियासती युग में सारंगी संगत का प्रमुख तार वाद्य होता था । तवायफों के साथ बजने के कारण इसकी लोकप्रियता को बट्टा भी लगा किन्तु प्रदेश में कुछ श्रेष्ठ सारंगी वादक हुए हैं यथा : - महबूब खां, मोइनुद्दीन खां, रज्जब अली खां, मुनीर खां, (सीकर) नैनूराम, रमजान खां, मोइनुद्दीन खां (जयपुर) पत्ती खां, सुल्तान खां, मुन्ने खां (जोधपुर) कालका प्रसाद, राम नारायण, इंदरलाल (उदयपुर) ।

सितार व सरोद वादक

राजस्थान में श्रेष्ठ सितार वादक हुए हैं किन्तु सरोद वादकों में सभवतः उस्ताद अली अकबर खां (जोधपुर में अल्पकालीन प्रवास) व उनके शिष्यों का ही नाम लिया जा सकता है । सितार वादकों में प्रमुख नाम हैं । रहीम सेन, अमृत सेन, शशिमोहन भट्ट (जयपुर), रघुवीर शरण (अलवर), रामलाल माथुर (जोधपुर), जसकरण गोस्वामी (बीकानेर) ।

सरोद वादक

उस्ताद अली अकबर खा (जोधपुर दरबार), दामोदर लाल काबरा (जोधपुर)

वायलिन वादक

सत्यदेव पंवार (जोधपुर-दिल्ली), जय कुमार पंवार (जयपुर)

गिटार वादक

बृजभूषण काबरा (जोधपुर) पंडित विश्वमोहन भट्ट (जयपुर), पंडित भट्ट ने गिटार को परिष्कृत कर 'मोहन वीणा' का रूप दिया है ।

बांसुरी वादक

सूरजनारायण पुरोहित (जोधपुर), बी.एल. शर्मा (जयपुर)

तबला वादक

आशिक हुसैन, हिदायत खां (जयपुर) अब्दुल हाफिज खां, चतुरलाल (उदयपुर) शंभूदयाल पंवार (जोधपुर), फैयाज खां (सीकर), किशनसिंह (अलवर) ।

इनके अतिरिक्त नजीर खां (क्लारनेट), महमूद धौलपुरी (हारमोनियम) व चमनलाल (मडोलिन) के नाम उल्लेखनीय है । अन्य कई साधक भी विद्यमान हैं ।

23.08 राजस्थान के लोक संगीत की पृष्ठभूमि

लोक संगीत

किसी भी प्रदेश का लोक संगीत वहां की संस्कृति का अविभाज्य अंग होता है । सामाजिक जीवन का कोई भी लोकोत्सव संगीत के बिना अधूरा व नीरस रहता है । लोक संगीत की जड़े इतनी गहरी हैं कि आधुनिकता, विदेशी प्रभाव व अन्यान्य मनोरंजन के साधनों के बावजूद वह अब कहीं न कहीं समाज से जुड़ा हुआ है ।

राजस्थान का लोक संगीत

राजस्थान का लोक संगीत बहुत समृद्ध रहा है । उसमें विविधता एवं व्यापकता है जैसे आदिवासियों, बिणजारो, लंगो, मांगणियारों, कंजरों, कालबेलियों का संगीत या फिर महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले संस्कार गीत तथा रजवाड़ी गीत आदि ।

बदलाव की पृष्ठभूमि

लोक संगीत के स्वरूप में अब जो बदलाव दिखाई पड़ता है वह कुछ हद तक वर्षों से चले आ रहे सामाजिक वातावरण में आए परिवर्तन का परिणाम है । सैकड़ों वर्ष पूर्व सामाजिक पर्वों व अनुष्ठानों में समस्त ग्राम या नगरवासी मिलकर भाग लेते थे । उसमें उनकी सहभागिता होती थी । सामंती युग के प्रभाव से ऊंच-नीच का भाव इतना व्यापक हो गया कि तीज त्यौहार भी क्षेत्रों व वर्गों में बंट गए । नृत्य संगीत पर भी इस बदलाव का असर पड़ा, धीरे-धीरे लोक-रूप भी भिन्न-भिन्न प्रदेशों व जातियों में बंट गए ।

शास्त्रीय तत्व

खुद विद्वान लोक संगीत की चर्चा में शास्त्रीय संगीत का जिक्र आना तक बर्दास्त नहीं करते । वैसे यह ठीक है कि न तो लोक संगीत की उत्पत्ति शास्त्रों से हुई न ही लोग संगीत शास्त्रीय संगीत का सही अर्थों में जनक रहा किन्तु राजस्थान की विभिन्न रियासतों में कुशल संगीतज्ञों व उस्तादों की

स्थाई नियुक्ति से प्रान्त में शास्त्रीय संगीत तो विकसित हुआ ही किन्तु किसी न किसी रूप में लोक संगीत भी प्रभावित हुए बिना न रहा । इस प्रकार राजस्थानी लोक संगीत में राग व लय के सम्बंध जुड़े । राजस्थानी लोक संगीत की चर्चा करते समय मांड, मारूँ, सिंधी, सारंग व सरो जैसी रागनियों का उल्लेख करना तर्क संगत कहा जा सकता है । कई गीतों में किसी राग विशेष के स्वर या उसकी छाया स्पष्ट दिखाई देती है । उस्तादों या शास्त्रीय गायकों द्वारा लोक-धुन, बजाई- गाई जाये तो उसमें तान मुरकी आदि की संभावना बनेगी ही । इसलिए एक ही धुन को विभिन्न लोगों द्वारा प्रस्तुत किए जाने का नतीजा भी भिन्न-भिन्न दिखाई देगा । 'घूमर' गीत को शास्त्रीय, पेशेवर, गायक, घरेलू महिलाओं व लोक वाद्यों पर सुने जाने पर सबकी रंगत अलग नजर आएगी जबकि मूल धुन वही रहेगी ।

प्रसिद्ध लोक गायक लंगों व मांगणियारों शास्त्रीयता से सर्वाधिक प्रभावित लगते हैं । साथ ही रजवाड़ों में पनपे रजवाड़ी- गीतों में संस्कार व अन्य गीत सम्मिलित हैं । इनकी धुनें परिष्कृत व तराशी हुई लगती हैं । इन्हीं में से कुछ टकसाली बंदिशें आज राजस्थान की सर्वाधिक लोकप्रिय धुनों में गिनी जाती है ।

वर्गीकरण

लोक गायकों का वर्गीकरण करना सरल कार्य नहीं है किन्तु अध्ययन मीमांसा हेतु सांगीतिक दृष्टि से उनको निम्न प्रकार बांटा जा सकता है : -

1. ग्राम्य एंव आदिवासी गीत व गायक
2. महिलाओं के संस्कार गीत
3. शास्त्र से अनभिज्ञ गायक-जातियों के गीत व गायक
4. पेशेवर गायक जातियों के उन्नत प्रकार के (रजवाड़ी आदि) गीत व गायक
5. शास्त्र से भिज्ञ पेशेवर गायक-जातियों के गीत व गायक

(लोक - गीतों का विस्तृत विवरण आप पिछली इकाई में पढ़ चुके हैं ।)

ग्राम्य गीत

इस श्रेणी में प्राय: वे गीत आते हैं जो प्राचीन हैं जो किसी भी प्रकार से सांगीतिक अलंकरणों से अछूते, सरल गीत हैं । ये अब केवल सुदूर ग्रामीण अंचलों या आदिवासी इलाकों में सुने जा सकते हैं ।

शादी - विवाह, जन्मोत्सव, जच्चा, विभिन्न पर्व-त्यौहार, संध्या-आरती व अन्य ऐसे गीत जो विशेष रूप से महिलाओं (गृहणियों) द्वारा गाए जाते हैं, संस्कार गीत कहलाते हैं । ये आम तौर से समूह में गाये जाते हैं ।

गायक जातियों के गीत (शास्त्र से अनभिज्ञ)

इनमें उन गायक/गायिकाओं के गीत हैं जो अपने मूल पेशे के साथ गायन से भी जीविका उपार्जन करते हैं जैसे कंजर, कालबेलिया, भोपा-भोपी आदि । इनके पारंपरिक गीतों में प्राचीनता की झलक मिलती हैं ।

पेशेवर गायिकाओं के गीत

संभ्रांत परिवारों के यहाँ शादी -विवाह, जन्मोत्सव, तीज व अन्य मांगलिक पर्वों पर एक ओर जहां गृहणियां स्वयं मिलकर राजस्थान गीत गाती हैं वहीं पीढ़ियों से चली आ रही परिवार की पेशेवर जाति की महिलाऐं स्वत : ही अपने जजमान के यहां गीत गाने पहुँच जाती हैं । ये दो या तीन की

संख्या में होती हैं तथा हारमोनियम व ढोलक की संगत पर उन्नत प्रकार के रजवाड़ी गीत कुशलता से गाती हैं ।

शास्त्र से भिज्ञ गायक जातियों का संगीत

सामाजिक दृष्टि से कई गायक-जातियां राजस्थान में विद्यमान हैं जिनमें ढोली, मिरासी, कलावन्त, लंगा, मांगीयार, पदाली, ढाढी, रावत भोपे, जोगी, सरगरा, कामड, नगारची, भगत, रावत, राणा, भाट, भवाई, कंजर, कालबेलिया आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं । इनकी गायन-वादन व नृत्य की अपनी-अपनी परंपराएं व संगीत शैलियां हैं । इनमें लगा व मांगणियारों का संगीत सबसे अलग दिखाई पड़ता है ।

उपर्युक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त भजन व वाणी गीत गाने वालों का भी अलग महत्व हैं । इसी प्रकार लोक नाट्यों के अन्तर्गत ख्याल -लावणी, रम्मत पवाड़े व संगीत दंगलों के गीतों की परम्पराएँ हैं ।

23.09 लोक संगीत की परम्परायें

1. संस्कार व अन्य गीत-गायन परम्परा (गैर पेशेवर)
2. जजमानी व्यवस्था व पेशेवर संगीतज्ञ

राजस्थान के लोक संगीतज्ञों को दो प्रमुख वर्गों में बाटा जा सकता है । पहले वे जो गैर व्यावसायिक हैं । इनमें भजन गायक, संध्या आरती गाने वाली गृहणियां, संस्कार व मंगल गीत गायिकायें आदि हैं । सामुदायिक गायन की इन परम्पराओं में किसी गायक या गायिका विशेष का नाम नहीं होता । सब मिल कर गाते हैं या अनुभवी गायक/गायिका का स्वर प्रमुख होता है अन्य का समवेत । ये परम्परायें गैर पेशेवर व शौकिया कलाकारों में विद्यमान हैं । इनमें विभिन्न पर्वों व अन्य अवसरों पर गाए जाने वाले गीत व गीतकार भी सम्मिलित हैं ।

दूसरे वर्ग में वे गायक व वादक आते हैं जो संगीत से ही अपनी जीविका चलाते हैं । परिवर्तनशील समय-चक्र के कारण अब इन पेशेवर संगीतज्ञों में कुछ ही ऐसे हैं जिनके बच्चे या शागिर्द उनकी परम्परा को आगे निभा सकें । समाज ने भी इनमें मे अधिकांश को निम्न जाति का समझ कर मूल सामाजिक व सम्मानित व्यवस्था से अलग रखा । अत: नई रोशनी में व शिक्षा के प्रचार के कारण इनके बच्चों में चेतना जागृत हुई और उन्होंने नए पेशे अपनाने आरम्भ कर दिये ।

वैसे तो गायन, वादन व नृत्य तीनों मिल कर संगीत बनता हैं । शास्त्रीय संगीत में तीनों कलायें अपने-अपने संगतकारों के सहयोग से स्वतंत्र रूप से प्रदर्शित होती हैं किन्तु लोक संगीत में साधारणता ये एक-दूसरे के साथ मिलकर सामुदायिक रूप में प्रदर्शित होती हैं । राजस्थान के लोग संगीत में कुछ विधायें अपनी पृथक विशेषतायें रखती हैं व स्वतंत्रता बरतती हैं अत: यहां प्रमुख गायक -गायिकाओं व वादकों के नामों की सूची दी जा रही हैं । इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

23.10 लोक गायन के कलाकार

मांड व रजवाड़ी गायन सामन्ती युग का गायन है जो स्वर व ताल के हिसाब से ग्राम्य गीतों से पृथक् व परिष्कृत रूप में विद्यमान है । मांड गायिकाओं में स्व. अल्लाजिलाई बाई (बीकानेर) व स्व. गवरी देवी ने अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त की थी । इनके अतिरिक्त ये नाम उल्लेखनीय हैं - मांगी बाई (उदयपुर), बन्नो बेगम (जयपुर), सरस्वती देवी (उदयपुर - जयपुर) ।

पेशेवर गायकों व वादकों में निम्नलिखित कलाकारों के नाम उल्लेखनीय है

भूंगर खां, साकर खां, पेपे खां, राणा खां, सिदिक खां, लाखा खां, गफूर खां, मेहरदीन कोहीनूर, रुकमा, जहूर खां (मेवाती) आदि ।

पेशेवर संगीतज्ञों का संक्षिप्त परिचय

भाट : - इनका पेशा रावों से मिलता जुलता है किन्तु इनका सामाजिक स्तर कुछ ऊंचा है । ये जजमानों की बहियां वर्षों तक सहेज कर रखते हैं भाटों में भाट-चारण एक खांप होती हैं । मारवाड़ की ओर के भाट रासधारी होते हैं ये नाचते भी हैं तथा कठपुतलियां भी नचाते हैं ।

रावल : - ये चारणों को जजमान मानते हैं । ये खेल -तमाशा दिखाते हैं और गाना-बजाना करते हैं तथा रम्मत भी करते हैं । ये मारवाड़ में सोजत व जैतारण परगने में अधिक हैं । राजपूत, जाट, चारण व भाट के अलग-अलग रावल होते हैं ।

कामड़ - राजस्थानी प्रदेश के लोक-गायकों में विविध रस एवं विषयों पर गीत गाने वाले मिल जायेंगे । सामन्ती युग के राजवाडी गीतों के श्रृंगार, वियोग, आमोद-प्रमोद के विषयों पर मांड या अन्य गायक मिलते है । इसी प्रकार ग्रामीण अंचलों में देवी-देवता व लोक-देवता के भक्ति रस से सरोबार गीत गाने वाले मिल जायेंगे । ऐसी ही एक गायक जाति हैं ' 'कामड़'' । ये तंदुरे व चिकारे पर गीत गाते हैं । साथ में इनकी औरतें तेराताली नृत्य करती हैं । तेराताली मंजीरे बजाने या टकराने का एक मोहक ढंग होता है । कामड़ अपने इष्ट रुणेचे के बाबा रामदेव जी के गीत गाने के लिए प्रसिद्ध हैं । ये लोग मारवाड़, पाली, डीडवाणा व पोकरण की तरफ ही ज्यादा मिलते हैं ।

बैरागी

साधुओं की एक जात ' 'बैरागी '' होती है जो आजीविका के लिए गाना गाते हैं । जैसे बंगाल के बाउल गायक । ये रासधारी शैली के नाट्य गीत गाने में प्रवीण होते हैं, साथ ही अन्य भजन भी गाते हैं ।

जोगी

जोगी एक गायक जाति है जो बीकानेर, जोधपुर और शेखावाटी क्षेत्र में प्रमुखता से विद्यमान हैं । ये नाथपंथी होते हैं तथा भरथरी, गोपीचंद व शिवजी का ब्यावला गाने में सिद्धहस्त हैं । कुछ शिवभक्त जोगी भी होते हैं जो निर्गुण, सबद व गोरखपंथी भजन गाते हैं । जिनमें योग का वर्णन होता है । जोगी शब्द 'योगी' से ही बना है । जोगियों में कनफटे जोगियों का काफी सम्मान हैं । ये कई स्थानों के महन्त भी हैं और कानों में कुण्डल पहनते हैं ।

कानगूजरी गायक

अधिकतर मारवाड़ की ओर निवास करने वाले कानगूजरी गायक कृष्ण भक्त होते हैं । ये जाति के गूजर होते हैं । ये रावणहत्था वाद्य बजाते हैं, साथ में गाना गाते हैं व नृत्य करते हैं ।

भोपा

अपने लोक-देवता की स्तुति को गा गा कर सुनाने वाले भोपे कहलाते हैं । गोगाजी, पाबूजी, भैरूजी, हडबूजी, माताजी व देवनारायण के भोपे अलग-अलग होते हैं । इनके विवरण इस प्रकार हैं :-

गोगाजी

गोगाजी चौहान राजपूत थे । ये गायों की रक्षा करते-करते मारे गये । तब से ये पूजे जाने लगे । सांप का काटा हुआ व्यक्ति इलाज के लिए इनके थान (स्थान) पर लाया जाता है । गंगानगर के नौहर -भादरा के निकट गोगामेड़ी में इनका विशाल मेला लगता है । इनके भोपे फड़ बांचते गाते हैं ।

पाबूजी

पाबूजी के भोपे रावणहत्था लोक वाद्य पर पाबूजी की विरुदावली गाते हैं । रावणहत्था बड़ा सुरीला वाद्य है । भोपा के साथ भोपी भी गाने में साथ देती हैं ।

रामदेव जी

रामदेवजी की हिन्दुओं व मुसलमानों दोनों में मान्यता है इनके भोपे (कामड़) मारवाड़ की तरफ ज्यादा होते हैं । ये तंदूरा बजाकर गाते हैं । इनकी स्त्रियां तेरातली नृत्य भी करती हैं ।

भैरूंजी

भैरूंजी के भोपे माथे पर सिंदूर लगाते है, कपड़ों में तेल डालते हैं । कमर में ये बड़े-बड़े घुंघरू बांधते हैं । ये मशक वाद्य भी बजाते हैं ।

देवनारायण

इन्होंने बगड़ावत शाखा में जन्म लिया था । इनको गूजर पूजते हैं । इनके भोपे 'जंतर ' वाद्य पर, फड़ के समक्ष इनकी विरुदावली गाते है ।

डूंगजी-झुबारजी

बीकानेर, जोधपुर व शेखावाटी क्षेत्र में कुछ स्थानों पर भोपे रावणहत्थे पर डूंगजी झुबारजी व बलजी- भूरजी की विरुदावलियां गाते हैं । इनका वाद्य लोकप्रिय रावणहत्थे से कुछ छोटा होता है व उतना सुरीला भी नहीं होता किन्तु इन भोपों में आस्था की भावना प्रबल है। इनकी स्त्रियाँ भी ऊंचे स्वर में गाती है । ये अन्य लोकप्रिय राजस्थानी लोक गीत जैसे पिणियारी, गोरबंद, मूमल, सुवटिया व बीछूड़ा गीत भी बड़े शौक से गाते हैं ।

कलावंत

ऐसी मान्यता हैं कि कलावंत धर्म परिवर्तित सुनी मुसलमान पेशेवर गायक - वादक होते हैं । ये विशेष रूप से मारवाड़ की ओर बसे हुए हैं । इन्हें मीरासी मुसलमान या राणा भी कहा जाता है।

राणा

राणा जाति के कलाकारों का कहना है कि ये रण में आ (रण वाद्य) पर चोट मारते थे अत: राणा कहलाये । ये नगाड़ा (नगार -निसाण) भी बजाते हैं । शेखावाटी में मिरासी मुसलमान नगाड़ा बजाने के कारण राणा कहलाये जैसे नानू राणा या दूलिया राणा । ये दोनों ही चिड़ावी ख्याल शैली के श्रेष्ठ कलाकार थे ।

ढोली

ढोल बजाने वाले ढोली कहलाए । इन्हें नक्कारची, या दमामी भी कहते हैं । (दमामा एक प्राचीन वाद्य है) ये अपने को गंधर्वों का वंशज मानते हैं । ढोली जाति की स्त्रियां भी बहुत अच्छे रजवाड़ी गीत गाती हैं । विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर जजमान के यहां इनका नेग बंधा होता है । पेशेवर लोक कलाकारों में ढोली श्रेष्ठ है । पुरुषों में शहनाई, नगाड़ा, ढोलक, तबला व सारंगी वादक होते हैं

। पिछले कई वर्षों में इनके कुछ कलाकारों ने बाहर जा कर बहुत नाम कमाया है व फिल्मों में भी योगदान दिया है ।

सरंगड़ा

ये भी ढोली जाति की तरह अपना पेशा अपनाए हुए हैं। ये विशेष रूप से कच्छी-घोड़ी नचाने में प्रवीण हैं । प्राचीनकाल में ये 'सर ' (तीर) बनाया करते थे जिससे इनका सरगाराह या सरगड़ा नाम पड़ा । ये ढोल बजा कर डूंडी पीटते हैं । मीरासी

ये मुसलमान होते हैं और अलवर, जयपुर, मारवाड़ व जैसलमेर में फैले हुए हैं । ये वंशावलियां गाकर सुनाते हैं । पुरुष व स्त्रियां दोनों ही गाने बजाने का काम करते हैं । अलवर के मीरासी, मेवाती कहलाते हैं । इनके जजमान होते हैं । इनमें से कइयों को जागीर भी मिली हुई हैं। जैसलमेर के मीरासियों ने मांड-गायकी परम्परा को बनाए रखा है ।

ढाढी

ये मांगलिक अवसरों पर जजमानों के यहां वंशावली सुनाते हैं । इनकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं है इनमें हिन्दू व मुसलमान दोनों ही होते हैं । ये गायन में प्रवीण होते हैं । ये चिकारा वाद्य बजाते हैं । प्राचीनकाल में ये रणभूमि में शूरवीरों की प्रशंसा के गीत गाते थे । ये सारंगी व रवाब वाद्य बजाते हैं ।

लंगा

लंगा व मांगणियार गायक पिछले पचास वर्षों से इतने मशहूर व लोकप्रिय हुए हैं कि इनकी ख्याति देश में ही नहीं विदेशों में भी फैली हुई है । राजस्थान के उत्तस्पश्चिमी इलाकों में, विशेष रूप से जैसलमेर व बाडमेर क्षेत्र में जजमानी व्यवस्था के अन्तर्गत पेशेवर गायक-वादक लंगा व मांगणियारों की गायन शैली इतनी अद्भुत है कि सुनते ही बनता है । वैसे ये लोक कलाकार कहलाते हैं किन्तु इनके गायन में शास्त्रीय संगीत जैसी तानों व लयकारियों के दर्शन होते हैं

मान्यता है कि लंगों के पूर्व पुरुष देवीदास हिन्दू थे, बाद मैं मुसलमान धर्म अपनाना पड़ा । ये शहनाई-नुमा वाद्य सुरणाई बजाते थे । लंगों में दो प्रमुख खापें हैं, एक सुरणाई वाद्य के कारण सुरणाईयां लगा व दूसरे सारंगी वाद्य बजाने के कारण सारंगियां लगा कहलाते हैं । लंगा गायक अपने साथ सिंधी सारंगी व खड़ताल विशेष रूप से बजवाते हैं । इनकी गायन रचनायें मधुर होती हैं । ये सूप, सामेरी, आसा मांड व अन्य कई रागें गाते हैं ।

मांगणियार

मांगणियारों के जजमान प्राय : हिन्दु सवर्ण हैं । जबकि लंगों की जजमानी सिंधी मुसलमानों में हैं । मांगणियार पुरुष राजस्थान ही गाना गाते हैं । इनकी प्रतिनिधि वाद्य कमायचा हैं । अन्य वाद्यों की संगत भी होती है । मांगणियारों के गीत लोकप्रिय के होते हैं तथा ये भजन भी गाते हैं । इनमें आशु कवि भी होते हैं ।

राजनट

परम्पराएँ प्राचीन युग में नाट्य कर्म नट द्वारा होता था । नटों के प्रमुख तीन प्रकार हैं । ये मनोरंजन से अपनी आजीविका एवं चलाते हैं । राजनट शारीरिक क्रीड़ायें व कलाबालियां दिखाने में सिद्धहस्त होते हैं । इनकी क्रियाओं के साथ इनके साथी गाने बजाने से इनका उत्साह बढ़ाते हैं । ये

बड़ी ढोलक बजाते हैं । नटों में बाजीगर भी होते हैं जो तरह-तरह के खेल कला एवं दिखाते हैं । ये बंशी व डमरू वाद्य प्रयोग में लाते हैं ।

कठपुतली नट

वैसे कठपुतली नट घुमन्तू जाति के लोग होते हैं जो जगह-जगह कठपुतली का खेल दिखा कर पैसा कमाते हैं-पर अब इनके स्थाई निवास भी हो गए हैं । कठपुतली नचाने वाला नट बड़ा कला मर्मज्ञ होता है । उसे संगीत के स्वर-लय का भी ज्ञान होता है । ये गीत भी कुशलता से गाते हैं ।

भवाई

यह पेशेवर नाचने गाने व नृत्य करने वाली जाति है । ये लोग स्वावलम्बी व आत्माभिमान होते हैं । ये चमत्कारी प्रदर्शन में पटु होते हैं तथा इसमें नए-नए प्रयोग करते रहते हैं । इनके साथ ढोल व मंजीरा वाद्य बजते हैं । इनके कई खेल तो इतने विस्मयकारी होते हैं कि लोग दांतो तले उंगली दबाने लगते हैं । इनके खेलों में प्रसिद्ध है - सात घड़ों या कांच के गिलास सिर पर रखकर नाचना, तलवार पर या काँच के टुकड़ों पर नृत्य करना, परात के किनारे पर दोनों पैर रखकर तथा साथ ही सिर पर मटके रखे हुए लय में नृत्य करना आदि ।

कव्वाल

कलावन्तों से ही कव्वालों का निकास हुआ । सूफी संतों से कव्वाली परम्परा का आरम्भ हुआ । जयपुर व अजमेर कव्वाली के प्रमुख क्षेत्र हैं ।

कालबेलियां

ये सांपों को पालने वाले घुमक्कड़ जाति के लोग होते हैं । ये पूंगी तथा खंजड़ी बजा कर गाते भी हैं । पूंगी पर ये लोकप्रिय लोक गीत बजाते हैं । इनकी स्त्रियां बहुत आकर्षक नृत्य करती हैं ।

23.11 इकाई सारांश

इस प्रकार हमने देखा कि राजस्थान में शास्त्रीय एवं लोक संगीत की समृद्ध परम्पराएँ रही हैं । स्वाभाविक हैं कि दोनों क्षेत्रों में ही संगीतज्ञों की धूम रही हैं । शास्त्रीय संगीत में जहां डागर व भट्ट परिवारों ने यश कमाया है वहीं लोक संगीत के क्षेत्र में घुमक्कड़ जातियों ने अपना रास बिठाया है । जयपुर मुख्यत : शास्त्रीय संगीतज्ञों का घर रहा है वहीं लोक गायकों का क्षेत्र सम्पूर्ण प्रदेश रहा है । आजकल राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर शास्त्रीय व लोक गायकों ने अपनी पहचान बना ली है । शास्त्रीय संगीतज्ञों को प्रारम्भ में राजस्थान के रजवाड़ों का बहुत प्रश्रय मिला वहीं जन जीवन की भक्ति धारा ने स्थानीय गायकों को रोजगार, संरक्षण व प्रोत्साहन प्रदान किया । आज भी लोक गायक न केवल परिवारों पर बल्कि जाति समूहों में अपनी कलाओं को वंशानुगत तौर पर आगे बढ़ाते जा रहे हैं ।

23.12 शब्दावली

संगीत मे साधारणतया उपयोग में आने वाली महत्वपूर्ण शब्दावली :

शास्त्रीय संगीत :

ध्रुपद - धमार	-	गायन शैली
ख्याल	-	,,

ठुमरी - दादरा	-	''
गजल	-	''
राग	-	स्वर रचना विशेष
ताल ठेका -- लय	-	संगत के वाद्यों पर बजने वालों समय व मात्रा की इकाइयां
आलापस्वर विस्तार की प्रक्रियाएं		-तोड़े-तान-
वादन	-	वाद्य यंत्र
सितार, सरोद, वायलिन	-	वाद्य यंत्र
बांसुरी, शहनाई, सारंगी, पखावज, तबला, जलतरंग	-	विभिन्न शास्त्रीय नृत्य प्रकार
जलतरंग, कथक, भरतनाट्यम, कथकलि	-	मणिपुरी, ओडिसी, कुचिपुड़ी

शब्दावली :

लोक	-	संगीत
मांड, सोरठ, आसा	-	लोक रागिनीयां
देश, सिंधी, सारंग	-	''
इकतारा, चौतारा, जंतर	-	तंत वाद्य
सारंगी, रावणहत्था	-	''
नड, बाँसुरी, अलगोझा	-	फूंक के वाद्य
पूंगी, बांकिया,	-	''
घंटा, खड़ताल, मंजीरा	-	घन वाद्य
झांझ, मोरचा	-	''
ढोलक, ढोल, घेरा		-
अवनद्ध वाद्य		
चंग, डफ, मादन	-	''
डमरू, नगाड़ा, डेरू	-	''

23.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये ।

(1) हवेली संगीत क्या है संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए ।

(2) राजस्थान के लोक संगीत पर प्रकाश डालिये ।

(3) राजस्थान में संगीत के क्षेत्र में अत्रोली घराने का क्या योगदान है ।

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये ।

(1) प्रदेश के विशिष्ट वादक यन्त्रों का वर्णन कीजिए ।

(2) राजस्थान में ध्रुपद गायक कौन-कौन हुए? प्रत्येक के बारे में लिखिए ।

(3) राजस्थान में लोक संगीत की क्या पृष्ठभूमि रही? समझाइये ।

24 "राजस्थान के नृत्य' ' (शास्त्रीय नृत्य परम्पराएँ)

इकाई संरचना

24.01 उद्देश्य

24.02 प्रस्तावना

24.03 नृत्य को अवधारणाएँ

24.04 राजस्थान का शास्त्रीय नृत्य-कत्थक

24.05 कत्थक: जयपुर घराना

24.05.1 कत्थक का महत्व

25.05.2 विशेषताएं

24.06 इकाई सारांश

24.07 अभ्यासार्थ प्रश्न

24.01 उद्देश्य

सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य में, नृत्यों की विविधतापूर्ण रोमांचक और अति प्राचीन एवं पारम्परिक परम्परा 'नृत्य ' के भौतिक रंग रूप एवं स्वरूप समसामयिक जीवन शैली पर पड़ने वाले आधुनिकतम प्रभावों एवं सूचना प्रौद्योगिकी के एक ऐसे युग में जहाँ दुनियां की औद्योगिक दूरियां नाममात्र रह गई हैं और सीमाएं सिमट गई हों, अन्य कलाओं की तरह कहीं विगत के धुंधले में खोई सी लगती है । यद्यपि लोकनृत्य आज भी लोक जीवन के रंगों में कहीं गहरी लय एवं थिरकन के साथ प्रवाहमय है । ऐसे में, आधुनिकता की भागदौड़ के बीच भी परम्परा के सूत्रों को ओझल न होने दें, इनका संरक्षण एवं संवर्द्धन करें और सांस्कृतिक धारा से विलग न होने दें, इसके लिये आवश्यक है कि नई पीढ़ी नृत्य विद्या से परिचित हो । इसी परिप्रेक्ष्य में इस इकाई का अध्ययन करने के बाद :

- आप यह विश्लेषण कर सकेंगे कि नृत्य विद्या के उद्गम के क्या कारण थे और सदियों से किस प्रकार इस विद्या को सहेजा और संभाला गया है ।
- आप नृत्य के मौलिक तथ्यों का परिचय कराने में भी सक्षम होंगे ।
- आप यह भी बता सकेंगे कि भारत के शास्त्रीय नृत्य परम्परा की समृद्धि के सन्दर्भ में राजस्थान के नृत्य कितना महत्त्व रखते है ।
- जयपुर कत्थक घराना किन परिस्थितियों एवं विशेषताओं के कारण जग प्रसिद्ध हुआ ।
- नृत्यों की विविधता के पीछे विभिन्न समुदायों की क्या भूमिका रही है ।

24.02 प्रस्तावना

समसामयिक युग में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में बदलाव की प्रक्रिया तीव्र गति से जारी है । सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने दुनिया को संकुचित बना दिया एवं विभिन्न संस्कृतियां एक दूसरे के इतनी करीब आ गई हैं कि कई संस्कृतियों के प्रभाव ने परम्परागत सांस्कृतिक विधाओं के मौलिक स्वरूप को प्रभावित करना आरम्भ कर दिया है । ऐसे में विभिन्न विधाओं की मौलिक पहचान

एवं रंग रूप के बारे में चिन्तन एवं मनन आवश्यक है । प्राचीन भारतीय नृत्यों की लम्बी परम्परा रही है । इन विधाओं के वास्तविक स्वरूप एवं तत्वों की जानकारी से विद्यार्थियों द्वारा संस्कृति के मौलिक रूप का विश्लेषण करना सम्भव हो सके । साथ ही नृत्य जैसी विधा जिसे संरक्षण एवं पोषण की सर्वाधिक आवश्यकता है, उसकी निरन्तरता को गतिमय रखना भी सम्भव हो ।

नृत्य कला एक दृश्य कला है । नृत्य कला के रोमांच की अनुभूति नृत्य मंचन के समय ही सम्भव है । दृश्य होने के कारण नृत्य मूर्त है । मूर्त का प्रभाव अमूर्त की तुलना में स्वाभाविक रूप से अधिक होता है । उसकी पूर्व अभिव्यक्ति के अभाव में सुनकर या पढ़कर उसकी निरन्तरता का पोषण नहीं किया जा सकता है ।

राजस्थान देश के उन क्षेत्रों में से हैं जो अंग्रेजों की सांस्कृतिक परछाइयों से, पिछली सदियों से भी अधिक समय तक अछूता रहा और अपने मोहक सांस्कृतिक विधाओं की प्राचीन और बहुत लम्बी परम्परा को संजोये रखने में सफल रहा । राजस्थान का लोकजीवन अनेक विषमताओं के बावजूद जिन्दगी को त्यौहारों, पर्वों और एक लम्बी उत्सवों भरी श्रृंखला के साथ जीता है, गाता है और नाचता है । सदियों पुरानी लय, ताल और धुन जनजीवन के लहू में प्रवाहित है राजस्थान का रंगों भरा उपहार जनजीवन में रचे बसे संगीत और नृत्य के बिना अधूरा लगता है । राजस्थान में संगीत नृत्य बन गया है और नृत्य संगीत । इन दो विधाओं के बीच कोई रेखा खींचना मुमकिन नहीं लगता । जिन्दगी के कठोर यथार्थ का मुकाबला करने में राजस्थान के लोग शायद इसीलिए सक्षम है कि इनकी शुष्क जिन्दगी में गीत संगीत और नृत्य सरसता की सरिता बहाते हैं । राजस्थान की नृत्य परम्परा की रुमानी विविधता की चर्चा करें तो नृत्यों की एक लम्बी शृंखला के उज्ज्वल पक्षों को पढ़ना अच्छा रहेगा । लोक नृत्यों का विस्तृत विवरण हम इसके बाद की अगली इकाई (सं. 25) में करेंगे ।

24.03 नृत्य की अवधारणाऐं

काव्य एवं संगीत के उद्भव के बारे में भले ही यह बात सच हो कि ' आह से उपजा होगा गान ' लेकिन नृत्य की जड़ें मनुष्य के एहसास की उन तहों में छिपी रही है जहां खुशी और उमंग की स्वत : ही इन्तहा हो जाने पर तन झंकृत हो नाच उठता है, गा उठता है, भले ही परिवेश जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर या बीकानेर के दूर दूर तक फैले रेत के समुद्र की खामोशी हो, कभी न टूटने वाला कष्टों भरा मौन हो या समाज से पूरी तरह कटे हुए विरानों में जिन्दगी की तालमेल, हकीकत को भोगते हुए आदिवासी नर नारी हो । नृत्य के उद्भव की मोहक साक्षी देते हैं -मोर ! जब गर्मी की लपटें जिस्म को झुलसाने के बाद वर्षा की फुहारों से ठंडी होती हैं । श्रावण में धरती हरियाली के रेशमी और मुलायम लिबास में जिन्दगी का नया राग छेड़ती है तो मोर के रोमांचक रंगों भरे पँख फैल जाते हैं । तन मन डोल उठता है- धूम मचा देता है । इसीलिए तो नर नारी का 'मन मयूर' नाच उठता है ।

नृत्य विधा के विकास की लम्बी कथा है । कई दौरों से गुजरने के बाद इस विधा के रंग रूप सजे और संवरे । नृत्य के उद्भव का अगला चरण मंदिरों और देवालयों के पावन और पवित्र प्रांगणों की ओर पड़ा जहां कृष्ण कथाऐं श्रोताओं को भाव विभोर कर आनन्द की परमानुभूति कराने लगती तो वे नाच उठते । नृत्य, दरअसल तन, मन और आत्मा का संगीत हैं जो भाव भंगिमाओं एवं अंग प्रत्यंग के संचालन में पारदर्शी अभिव्यक्ति देता है । मनुष्य के भीतर पैदा होकर पूरी लय में चलने वाले संगीत की उत्प्रेरक शक्ति ही तो है जो मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व के तार तार को झंकृत कर देती है और

उसका सम्पूर्ण शरीर गतिमान हो उठता है । नर्तन करने लगता है नृत्य एवं संगीत मात्र चाक्षुक या श्रव्य मनोरंजन के साधन मात्र नहीं माने गये हैं बल्कि मनुष्य को ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से आत्मानन्द की अनुभूति की ओर अग्रसर करने के साधन समझे गये हैं ।

दरअसल, भारतीय जीवन में संगीत और नृत्य जीवनशैली के अंग माने जाते हैं । यह हमारी सांस्कृतिक परम्परा की सांसें हैं । अंग संचालन एवं लय के साथ अभिव्यक्ति का माध्यम है जहां शरीर और आत्मा की भाषा के द्वारा भीतर की पारदर्शी अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया जाता है । कला एक सशक्त माध्यम है - अभिव्यक्ति का । नृत्य एवं संगीत आधुनिक जीवन की तरह मात्र सतही मनोरंजन के माध्यमों के रूप में भारतीय जीवन में स्वीकार नहीं किये गये । इससे हटकर, नृत्य संगीत तो अलौकिक साधन माने गये हैं । जैमिनीयाश्वमेघ में कहा गया है कि -

नृत्यतां गायतां चैव नानावाद्यं प्रकुर्वताम् ।
यथा संतुष्यते देवो न ध्यानाधैरित श्रुतम् । ।

अर्थात् जब लोग वाद्यों के साथ नाचते, गाते और खेलते हैं तो वे आराध्य का स्मरण और ध्यान करने से भी अधिक रिझाने का कार्य करते हैं । यही नहीं बल्कि स्कन्दपुराण में तो नृत्य एवं अन्य मंचीय कलाओं (Performing Arts) के लिए कहा गया है कि 'गीतं, वाद्यं च नृत्यं च नाट्यम् विष्णुकंथा मुने: । यः करोति पुण्यात्मा त्रैलोक्यपरि संस्थित: अर्थात् जो लोग संगीत नृत्य नाटक एवं इन तीनों के द्वारा विष्णु को प्रसन्न करते हैं वे तीनों लोक पार करके विष्णुलोक को प्राप्त होते हैं । शिव को नृत्यकला का महारथी माना गया । वे 108 प्रकार की नृत्य विधाओं के पारंगत माने गये। कृष्ण के महारास, मनुष्य की आत्मा को परमात्मा बनाने के रस की सृष्टि करने का पर्याय माना गया है ।

भारत के प्रमुख सात शास्त्रीय नृत्यों में से एक है -कत्थक नृत्य । उत्तरी भारत की नृत्य शैलियों की समृद्ध परम्परा में निरन्तर गतिशील, यह शैली आम आदमी का मन मोह लेने की अद्भुत क्षमता लिए हुए हैं । इस शैली का जन्म और प्रारम्भ का विकास मंदिरों और देवालयों के सौरभमय वातावरण में हुआ । प्राचीनकाल में मंदिर ही तो वे स्थान थे जहां से सामाजिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक जीवन की धाराएं फूटी । धार्मिक स्थल, मानव गतिविधियों के केन्द्र थे । इन स्थलों. के वातावरण में धर्म कथाऐं और चर्चाएं प्रचलित थी ।

कथाकार मंदिरों में कथा वाचन के समय भाव विभोर होकर नाचने लगते थे । कथन या कथा में नृत्य की स्वाभाविक मुद्राओं को दोहराये जाने की प्रक्रिया से एक नृत्य शैली का जन्म हुआ जो कथन के आधार पर कत्थक शैली कहलाई। कला एवं प्राचीन मंदिरों एवं देवालयों में नृत्य मुद्राओं वाली प्रतिमाएं, नृत्यों का उद्भव एवं विकास मंदिरों में होने का प्रमाण देती शिल्प हैं । राजपूतों के शासन काल में भी इस शैली को प्रश्रय मिला । धार्मिक कथाऐं, देवी देवताओं की कथाऐं आदि के द्वारा सद्गुणों, सद्विचार एवं सदाचरण की शिक्षा दी जाती थी ।

13 वीं व 14 वीं सदी में कृष्ण की लीलाओं एवं कृष्ण भक्ति ने समाज और साहित्य को प्रेरित एवं प्रभावित किया। इसका प्रभाव नृत्य शैली पर भी पड़ा और कत्थक का केन्द्रबिन्दु कृष्ण लीलाऐं बन गई । इसके बाद कत्थक राज दरबार तक पहुँचा । मुगलकाल में कत्थक के बाहरी रूप में परिवर्तन हुए । घाघरा और चोली, नृत्यांगना की वेशभूषा में अन्तर आया । मुगलकालीन उनकी वेशभूषा, सलवार, चूड़ीदार पायजामा, अंगरखा, मुगलिया टोपी आदि परिधान कत्थक नृत्य से जुड़ गये । इसी प्रकार झूमका,

श्रृंगार पेटी आदि नृत्यांगना की पोशाक के अंग बन गये लेकिन नृत्य का आन्तरिक पक्ष नहीं बदला । इस प्रकार राज दरबार ने इसे कई अनौपचारिकताओं से लादने का प्रयास किया । एक तकनीकी पक्ष जरूर उभरा लेकिन कत्थक अपने मूल भाव भक्ति और अभिव्यक्ति के मार्ग से नहीं हटा । तकनीकी पक्ष इस शैली से जुड़ गये परन्तु कृष्ण की लीलाओं की परम्परा एवं कथाऐं निरन्तर तकनीकी पक्षों पर हावी रही ।

24.04 राजस्थान का शास्त्रीय नृत्य : कत्थक

भारत की शास्त्रीय नृत्यों की श्रृंखला में कत्थक नृत्य का महत्वपूर्ण स्थान है । हड़प्पा और मोहिन्जोदडों से प्राचीन संस्कृति के प्राप्त अवशेषों में मिली नृत्य मुद्राओं में रत कांस्य प्रतिभाएं कत्थक की मुद्राओं के समान है जो इस शैली की प्राचीनता का बोध कराती हैं ।

समय की एक लम्बी यात्रा के बाद आधुनिक युग में यह शैली एक विकसित रूप को प्रदर्शित करती है । कत्थक के दो प्रमुख घराने माने जाते हैं जहां यह विकसित एवं पल्लवित हुई । लखनऊ और जयपुर घराने के नाम से विख्यात कत्थक की दो प्रमुख शैलियां हैं । लखनऊ घराने के प्रवर्तक ईश्वरीप्रसाद (इलाहाबाद) एवं जयपुर घराने के उन्नायक भानूजी माने जाते हैं । नृत्य दरअसल भाव ओर ताल का समन्वय है लेकिन लखनऊ घराने में भाव भंगिमाओं को विशेष महत्व दिया जाता है जबकि जयपुर घराने में पद ताल की महत्ता ज्यादा है ।

कत्थक केवल अंगसंचालन का करिश्मा ही नहीं वरन् भाव भंगिनाओं का अनूठा समिश्रण भी है । इसमें हाव भाव, ताल और लय का समन्वय होना स्वाभाविक है । कृष्ण ने पिचकारी छीनी, भागे तो उत्साह व उमंग के भाव चेहरे पर आ ही गये फिर पलट के साथ अंगों में थिरकन शुरू होती है । भरतनाट्यम और ओडिसी के स्वरूप पूर्व में निखर चुके थे लेकिन कत्थक ने तो एक लंबा सफर तय किया - मंदिरों से लेकर दरबारों तक इस सफर में कत्थक के स्वरूप और आकार प्रकार में अनेक परिवर्तन भी हुए लेकिन उसकी मूल आस्था सुरक्षित रही । बोलबांट, अंगसंचालन, वेशभूषा और कथा में परिवर्तन के साथ आज आप कत्थक का जो रूप देख रहे हैं उसमें उसकी खूबसूरती सिमट सी गयी है ।

शंकर देव ने पं. अच्छन महाराज से नृत्य की दीक्षा ली थी । शंकरदेव जी ने जयपुर और लखनऊ घरानों की नृत्य परम्पराओं को सम्मिलित रूप से एक ही मंच पर प्रस्तुत किया, यही गुण बाद में गुरु शिष्य परंपरा के रूप में सामने आये ।

ललित कलाएं स्थूल रूप से भिन्न जरूर दिखायी देती है लेकिन इनका धरातल एक ही है, जहां तात्विक दृष्टि से वे समान हैं । शंभु महाराज का घूंघट हो या राधा का श्रृंगार, पलटा हो, नारायण प्रसाद का कृष्ण राधा वियोग प्रसंग हो, अब इन सबका स्वरूप ही बदल गया है, यहां तक कि अंगनटवरी, मुगल कत्थक, बोल पटवरी मुगल के स्तर में भी गिरावट आयी है । नारायण प्रसाद जी तब नृत्य करते थे और कृष्ण से वियोग का प्रसंग आता तो उनकी आंखों में आंसू टपक पड़ते थे, अब तो भावुकता भी नहीं दिखलायी देती ।

24.05 कत्थक : जयपुर घराना

कत्थक की जयपुर शैली या जयपुर घराने का आरम्भ सवाई जयसिंह द्वितीय (1699 - 1743) के समय से मानी जाती हैं । सवाई जयसिंह गायन, वाद्य, नृत्य आदि कलाओं के प्रेमी थे । उन्होंने जयपुर के सिटी पैलेस के महल खास में इन कलाओं के विकास के लिए 'गुणीजन खाना ' खोला ।

इसका अर्थ था, समस्त दुर्गुणों से दूर कला के विकास को समर्पित स्थली । यहां इन कलाओं का निरन्तर अभ्यास चलता था । साथ ही जयपुर के गोविन्द देव जी के मंदिर मे रोज सायंकाल पुरुष नर्तक कत्थक प्रस्तुत करते थे ।

राजस्थानी वीरों की धरती रही है । यहां के राजा महाराजा धर्म प्रिय थे । वे वीर रस और युद्ध संचालन जैसी तत्परता को पसन्द करते थे । अत : कत्थक संचालन में गति को प्रधानता मिली । अभिनय पक्ष में कमी आई । नृत्य की गति में बेजोड़ लोच भी आया ।

जयपुर घराने में कृष्ण की बाल लीलाओं, गोपियों एवं कृष्ण का रास, शिव पार्वती प्रणय, गणपति एवं वीणावादिनी की पूजा आदि विषयक अधिक मुखरित होने लगे । शैली में नाटकीयता भी आई । जयपुर घराने के प्रवर्तक भानूजी माने जाते हैं । वे अपने आराध्य भगवान शिव की आराधना में तन्मय होकर तांडव नृत्य करने लगते थे । इन्हीं के वंशजों में हनुमान प्रसाद जी और हरिप्रसाद जी को दरबार तथा जनता ने 'देव परियों' की संज्ञा दी थी क्योंकि जब ये दोनों भाई अपना युगल नृत्य प्रस्तुत करते थे तो कहा जाता है कि 'रति कामदेव' के नृत्य की तरह मनोहारी दृश्य उपस्थित हो जाता था । इसी वंश में चांद और सूरज की जोड़ी भी हुई । चौमूं से निकले कन्हैयाजी जितनी देर नृत्य करते उनकी भाव भंगिमाएं निरन्तर बदलती रहती थी ।

ऐसे ही नृत्य के चमत्कारों के बीच कत्थक शैली को जयपुर घराने में पल्लवित एवं पोषित किया गया । इसमें रस निष्पत्ति की अद्भुत क्षमता है । कत्थक की इस शैली में नृत्य का आरम्भ विद्युत के आकाश में चमकने की भांति लय और ताल के साथ होता है । नृत्यांगना या नर्तक घुंघरुओं की रुनझुन, तबले की ताल, थिरकता था और पखावजियों के वादन आदि इन सभी की समरस युगल बंदी, दर्शकों को भाव विभोर करने की अद्भुत क्षमता लिए हुए थी ।

कत्थक अन्य शास्त्रीय नृत्यों से इस अर्थ में भी भिन्न है कि पदों की गति में तीव्रता से तीसरे चौथे और फिर एक पैर से चक्कर लगाकर 'ता था' के साथ दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर देता है । भरतनाट्यम से अलग कत्थक नृत्यांगना या नर्तक अपने नृत्य को स्वय संचालित करते हैं । निर्देशक की इसमें कोई भूमिका नहीं होती । दूसरी विशेषता यह है कि कत्थक में सम्पूर्ण शास्त्रीय कौशल उभरता है ।

जयपुर में महाराणा सवाई मानसिंह संगीत विद्यालय, राजस्थान संगीत केन्द्र एवं जयपुर कला केन्द्र, नृत्य के शिक्षण के केन्द्र हैं । बिरजू महाराज, गोपी कृष्ण, सितारा देवी, वैजयन्तीमाला, प्रेरणा भीमाली आदि नृत्य के कई साधक हैं । दुर्गालाल का नाम भी प्रसिद्ध है जिन्होंने इस शैली को देश विदेश में प्रसिद्धि दिलाने में योग दिया ।

24.05.1 कत्थक का महत्त्व

कत्थक नृत्य शैली, दरअसल जीवन दर्शन को सशक्त अभिव्यक्ति देने वाली एक समृद्ध शास्त्रीय शैली है । इसका मूलाधार, सृजन एवं संवर्द्धन है । विध्वंस तथा उसके बाद फिर सृजन की चक्र प्रक्रिया इसमें समाहित है । इसका लक्ष्य मूर्तिवत् मुद्राओं के सीमित दायरे से हटकर विविध भावों की अभिव्यक्ति पर संचालन एवं शारीरिक अभिनय के द्वारा अभिनय के माध्यम से जीवन के सत्य को उद्धारित करना है । पर संचालन की कुशलता के साथ नर्तक या नृत्यांगना मच पर अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का भी परिचय दे सकते हैं ।

कत्थक की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि नर्तक या नृत्यांगना नृत्य के प्रारम्भ या बीच बीच में कत्थक से जुड़ी 'शब्दावली' या नृत्य के सन्दर्भों का खुलासा करते है जिससे दर्शकों एवं नृत्य कलाकार के बीच का फासला घटता है तथा उनके बीच एक सहज संवाद की सृष्टि होती है ।

दर्शक नृत्य के साथ सामजस्य स्थापित करने में अधिक चुस्त हो जाते हैं । राजस्थान के जयपुर घराने की कतिपय विशेषताएं निम्नलिखित हैं : -

24.05.2 विशेषताएँ

(अ) थाट : थाट का तात्पर्य है कि एक नर्तक अपने पैरों को बिना उठाये मंच पर सिरकते हुए एक कोने से दूसरे कोने में चला जाता है और साथ ही वह अपनी भौंह, गरदन एवं कलाई से एक 'लय ' उत्पन्न करता रहता है । इस बीच इसी लय क्रम में चमककर अपना स्थान भी बदलते रहते हैं ।

(आ) आमद : आमद या नर्तक का मच पर आगमन अथवा अवतरण होना से है जो एक टुकड़े पर नाचते हुए है। यह टुकड़ा विशेष कर 'ता थेई ' तत थेई ' ता थेई तत थेई....." जैसी रचनाओं से होता है ।

(इ) गणेशवन्दना : नर्तक गणेश अथवा अराध्यदेव की स्तुति से अपना कार्यक्रम प्रारम्भ करता है ।

(ई) उठान : नृत्य प्रारम्भ होने के पश्चात कुछ समय तक पदाधातों से लय ताल खिलवाड़ किया जाता है तत्पश्चात नृत्य ' का रूप उभरने लगता है इस प्रक्रिया में कुछ क्षणों तक निरन्तर तबला, पखावज एवं घुंघुरुओं की एवं के गुंजित होने से लय ताल का एक सम वातावरण उत्पन्न हो जाता हे ।

(उ) पद संचालन : जयपुर घराने की उल्लेखनीय विशेषता बताते हुए इस बिन्दु पर यह कहा गया है? जिस प्रकार संगीतज्ञ अपनी ताल व लय का विस्तार एवं सामंजस्य करते हैं उसी प्रकार यहां नर्तक भी 'तत्कार के पलटे, लय, क्रम लय, कायदों, तिहाइयों के प्रकार को उसी भाव में प्रस्तुत करके नृतपक्ष को एक नयी गति एवं आकर्षण प्रदान करते हैं । जयपुर घराना 'ताल प्रधान नृतांग ' के उल्लेखनीय प्रदर्शन के कारण ही चर्चित है । इसके अतिरिक्त यहां अप्रचलित एवं विशिष्ट तालों उदाहरणार्थ, ब्रह्मताल, रुद्रताल, लक्ष्मीजी तथा गणेशजी भी नृत्य का संयोजन करते हैं ।

इसके अतिरिक्त विलम्बित तालों में भी संयोजन यद्यपि कठिन होता है, नृत्य संयोजन कर लिया जाता है । लय के चमत्कार पूर्ण प्रयोग, क्लिष्ट संयोजनों, उत्साह, उमंग, भ्रमरी के वैविध्यपूर्ण प्रयोग भी इसमें किये जाते हैं ।

इसी क्र म में यह उल्लेख भी करना जरूरी है कि जयपुर घराने के नर्तक कविता बोल के साथ नृत्य करते हैं । उस समय तबला, परवावज व नृत्य के बोल एक सा सामंजस्य उत्पन्न करते हैं । ये बोल ताल के एक आवर्तन से लेकर पचास आवर्तन तक लम्बे होते हैं । इन कवितांगों को 'लमछड ' कहा जाता है । 'लमछड ' के अलावा 'त्रपल्ली ', 'चौपल्ली ' परनों को भी प्रदर्शित किया जाता है । ध्रुपद गान शैली की भांति ही जयपुर घराने में विभिन्न प्रकार की लयकारियों का प्रदर्शन किया जाता है । सच्ची बात तो यह है कि नृतक के पैरों से बोलों की शुद्ध निकासी ही इस घराने की विलक्षण विशेषता है । अत: कहा जा सकता है कि क्लिष्टता को इसमें सरलता में बदल दिया गया है कहावत है कि एक

पगड़ी में जितने बल या पेच है उतने ही बल इस नृत्य की बन्दिशों एवं निकासी में हैं तोड़ा, टुकड़ा, परन, प्रिमलू इत्यादि अनेक प्रकार चर्चित हैं ।

(ऍ) विभिन्न विषयों एवं रसों का प्रदर्शन : जयपुर घराने में नृत्य के लिये विभिन्न विषय रहे हैं जिनमें पौराणिक कथाओं का तो वर्चस्व है ही परन्तु उनके साथ रामायण, महाभारत की कथाओं तथा साथ ही वीर, रौद्र व शान्त रसों के विषय भी आकर्षण के केन्द्र रहे हैं । चमत्कार प्रदर्शनों का अपना विशिष्ट स्थान था ।

जैसे, मंच पर गुलाल व अन्य रंगों को बिखरते हुए हाथी के व अन्य चित्र नाचते हुए अंकित करना, काँच के टुकड़ों नंगी तलवार की धार, बतासों की ढिगली पर नृत्य करना चमत्कारी नृत्य की श्रेणी में आते हैं । इस प्रकार के नृत्य के लिये नृत्याचार्य सुन्दर प्रसाद का नाम बहुत ही सम्मान से लिया जाता है ।

जयपुर घराने के नृत्यों में जब इतने रासो का प्रदर्शन किया जायेगा तो स्वाभाविक ही है कि नेत्र संचालन की अपनी भूमिका होगी । भ्रमरी का भी इस संयोजन में बहुत महत्व है । भ्रमरी में मुख्य रूप से एक स्थान पर खड़े होकर, एक पैर से निरन्तर दो या तीन चक्कर, सभी दिशाओं में चक्कर एवं उड़ान भरते हुए सा चक्कर लगाना इत्यादि सम्मिलित हैं । इन नृत्यों को ताल व लय देने वालों में तबला वादक मुख्य होता है । उसके साथ पखावज वादक है जो नृत्य के बोल भी बोलता है । वैसे बोलने का कार्य अलग से नृत्य गुरु द्वारा भी किया जा सकता है । अन्य कलाकारों में सारंगी सितार, हारमोनियम व बांसुरी वादक होते हैं

24.06 इकाई सारांश

आपने इस इकाई में यह अध्ययन किया कि किस व प्रकार प्रदेश में नृत्य की विशेषकर शास्त्रीय नृत्य की परम्पराएँ विद्यमान रही हैं । इस दृष्टि से जयपुर का कत्थक घराना उल्लेखनीय है जिसकी प्रशंसा व अपनी पहचान सम्पूर्ण देश में ही नहीं बल्कि बाहर भी रही है । कत्थक घराने की शास्त्रीय नृत्य परम्पराओं में गम्भीरता, भावलालित्य तथा गतिशीलता देखते ही बनती है । नृत्य कला का यह स्वरूप नबाबी एवं राजपूती दरबारों की परम्परा में विकसित हुआ । इसके ताल एवं लय की अपनी गतिविधि एवं महिमा है । जयपुर का कत्थक घराना अपनी थाट, आमद, क्लिष्टता, काव्य एवं भावों के साथ अद्भुत समन्वय, चमत्कारी प्रस्तुतीकरण के कारण सर्व विख्यात है । इसमें पुरुष नर्तक कृष्ण की वेशभूषा से सज्जित है वही नर्तकियां राधा के स्वरूप में । मुगल वेशभूषा का भी पूरा प्रभाव है । जयपुरी कत्थक में हाव- भाव, संगीत, बोल, मुद्राएँ सभी सरल एवं ग्राह्य हैं । साथ ही इसमें सृजन एवं प्रयोग की गहरी सम्भावनाएँ हैं ।

24.07 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये : -

(1) जयपुर घराने में थाट एवं आमद का क्या तात्पर्य है ।

(2) नर्तक एवं नर्तकियों की वेशभूषा पर प्रकाश डालिये ।

(3) कत्थक शास्त्रीय नृत्य की तीन प्रमुख विशेषताएँ बतलाइये ।

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये : -

(1) शास्त्रीय नृत्य में कत्थक की क्या विशेषताएँ हैं ।

(2) जयपुर कत्थक घराने के विकास पर प्रकाश डालिये ।

(3) जयपुरी कत्थक नृत्य के विषयों एवं रसों का उल्लेख कीजिये ।

इकाई सं. 25 "राजस्थान के लोक नृत्य"

इकाई सरंचना

25.01 उद्देश्य

25.02 प्रस्तावना

25.03 लोक नर्तक समुदाय

25.04 नाचता हुआ राजस्थान का लोक जीवन

- 25.04.1. घूमर नृत्य
- 25.04.2. डांडिया या गैर नृत्य
- 25.04.3. गींदड़ नृत्य
- 25.04.4. कच्छी घोड़ी का नृत्य
- 25.04.5. चारी नृत्य
- 25.04.6. भवई नृत्य
- 25.04.7. बमरसिया नृत्य
- 25.04.8. चारकुला नृत्य
- 25.04.9. लांगुरिया नृत्य
- 25.04.10. चोक चानजी नृत्य
- 25.04.11. लोक देवता के नृत्य
- 25.04.12. पणिहारी नृत्य
- 25.04.13. गणगौर नृत्य
- 25.04.14. नटों के नृत्य
- 25.04.15. कालबेलियां नृत्य

25.05. राजस्थान के रोमांचक लोक नृत्य

- 25.05.1. कंजरों के नृत्य
- 25.05.2. कामडों का तेरहताली नृत्य
- 25.05.3. ढोल नृत्य
- 25.05.4. जसनाथी सिद्धों का अग्नि नृत्य

25.06 आदिवासियों के लोक नृत्य

- 22.06.1. गरासियों के नृत्य
- 22.06.2. गणगौर के नृत्य
- 25.06.3. वालर नृत्य
- 25.06.4. मोरिया थाई रै थाई
- 25.06.5. मादल नृत्य
- 25.06.6. सहारियों के नृत्य

25.06.7. भीलों के नृत्य

25.06.8. गबरी नृत्य

5.07 इकाई सारांश

25.06 अभ्यासार्थ प्रश्न

25.01 उद्देश्य

आपने राजस्थान में नृत्य की स्थिति पर पिछली इकाई में अध्ययन किया है । इस इकाई में लोक नृत्यों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है । जिसे पढ़कर आप समझ सकेंगे कि : -

(1) जन जीवन से जुड़े लोक नृत्यों की क्या महिमा है ।

(2) लोक नृत्य किन उद्देश्यों, आकर्षणों एवं आस्थाओं से प्रेरित होते हैं ।

(3) नृत्यों की विविधता के पीछे किन-किन समुदायों की भागीदारी होती है ।

(4) जीवन की विषमताओं, दुःखों और कष्टों के मध्य जीवन में उमंग एवं उत्साह लाने के लिये इन नृत्यों की किस प्रकार भूमिका रहती है ।

25.02 प्रस्तावना

नृत्य एक मंचीय कला (Performing art) है । लोककला (Folk Art) जन जीवन से उपजी कला है । लोक का अर्थ लोगों (people) से है । जो सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग है । वेदव्यास जी ने महाभारत में कहा है - 'प्रत्यक्षदर्शी' लोकानां सर्वदर्शी भवेतर : । '' यह 'लोक ' ही संस्कृति की निरन्तरता का स्रोत है । लोक में गरीब, अमीर, पढ़े लिखे, अनपढ़, ग्रामीण, शहरी सभी शामिल है । इस लोक के दुख सुख की संवेदनाओं की स्वाभाविक एवं सहज अभिव्यक्ति ही लोककला है । लोक कलाऐं आज के रग की मनोरंजन की कला से भिन्न है । यह व्यावसायिकता से दूर प्रकृति चक्र में जन्म, परण या मरण से सम्बद्ध हैं । वर्षा, गर्मी या सर्दी, होली, दीपावली, तीज, गणगौर या ऐसे लोक के उत्साह एवं उमंग का प्रगटीकरण ही लोक कला है । वर्षा ऋतु मिलन एवं विरह के क्षणों को संगीत के स्वर एवं नृत्य की लय सौंप जाते हैं । आसाम का विहु हो या पंजाब का भँगड़ा नृत्य, फसल पकने पर लोक जीवन के पाव थिरकने लगते हैं।

स्वत: ही नाच उठना जैसे धरती से झरना फूटे, अपनी बोली में, हृदय के भावों की अभिव्यक्ति लोक कला या लोकनृत्य की आत्मा है । लोकनृत्य या कला में कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं होता । इसका उद्‌गम स्थल मनुष्य का हृदय होता है । अनेक लोकनृत्य विशेष त्यौहारों एवं पर्वो से सम्बन्ध रखते हैं ।

25.03 लोक नर्तक एवं समुदाय

यद्‌यपि नृत्य एवं संगीत जीवन को उत्तम बनाने एवं ईश्वर की आराधना के अंग माने गये लेकिन व्यावसायिक एवं सामाजिक स्तर पर इनका सतही रूप भी उभरा है । कई समुदाय एवं जातियां जीवनयापन के लिए संगीत एवं नृत्य कलाओं के पर्याय बन गये । संगीत के क्षेत्र में ढोली, ढांडी, मिरासी, मांगणियार, कलावन्त, कव्वाल, लगा आदि हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों ही समुदायों के लोग अपने कला कर्म के कारण इन जातिगत सम्बोधनों से पुकारे जाते हैं ।

राज दरबार एवं मुगलकालीन अपसंस्कृति में मात्र मनोरंजन के लिए नृत्य करने वाली नाचनेवालियों को बहुत सम्मान तो था लेकिन सामाजिक प्रतिष्ठा के स्तर पर यह वर्ग नीचे दर्जे पर आ गया । नृत्य के व्यावसायिक रूप को अपनाने वाली पातर, भगतण एवं कांचन कहलाती थी । नृत्य व्यवसाय में लगी इन नाचनेवालियों का दावा है कि उनका सम्बन्ध इन्द्र के दरबार की नृत्यांगना एवं अप्सरा रम्भा से है । उसने एक बार धरती पर आकर उन्हें नृत्य कला सिखाई । रमजानी हुर्कानी, पातर एवं भगतण-हिन्दु होती थी जबकि कांचनी एवं सावंत मुस्लिम होती थी । पातर एवं भगतण की पोशाकें अलग अलग होती थी । कांचली, कुर्ती एवं घाघरे के अलावा वे पायजामा एवं अंगरखा पहनती थी । कांचनी काँच का चूड़ा पहनती थी । कांचनी, नृत्य संगीत में अधिक कुशल होती थी ।

राजस्थान की लोक नर्तक जातियों में प्रमुख हैं-नट, भवाई, भाँड, कामड़, खोजे, फदाली, रावल, वेश्या, सांसी, सांठिया, कंजर, पातर, भगतण, कंचनी आदि

25.04 नाचता हुआ राजस्थान का लोकजीवन

राजस्थान देश के उन इलाकों में से है जिन पर थोपी गयी अभिजात्य संस्कृति का असर सबसे कम पड़ा । इसलिए यहां के जनजीवन में परम्परागत लोक संस्कृति अपना स्थान बनाये रख सकीं । राजस्थान का लोक जीवन आज भी अपने पर्व ओर त्यौहार बहुत उत्साह और उल्लास से मनाता है और उसके चरण सदियों पुरानी तालों और धुनों पर नर्तन कर एवं उठते हैं । राजस्थान की प्रमुख लोक नर्तक जातियां हैं - नट, ढोली, भवाई, भांड, खोजे, मिरासी, मांगणियार, फदली, लगा, पातर, कंचनी, रावल, वेश्या, सांसी, साटिया, कंजर, मीणा, गिरासिया, बंणजारा, नायक, भोपा आदि प्रमुख हैं 'घूमर ' राजस्थान का एक रोमांचक लोकनृत्य है । यह श्रावण की तृतीया के उत्सव की शोभा बढ़ाता है । इस श्रृंगार प्रधान नृत्य को महिलाऐं ही प्रस्तुत करती हैं । घूमर के पद, हस्तसंचालन और नृत्य विधि देखकर ऐसा प्रतीत होता है। कि कत्थक शायद इसी से उपजा होगा । इस नृत्य की गति विलम्बित से अति द्रुत तक होती है । महिलाऐं एवं युवतियां गोलाकार में घूमती और नाचती हैं । नृत्य का प्रमुख वाद्य नगाड़ा होता है, जो ताल और गति पर नियन्त्रण रखता है ।

राजस्थान के लोकनृत्य अपनी लय एवं विशेषताओं के कारण सम्पूर्ण राजस्थान में व्यापक रूप लिए हुए हैं लेकिन इसमें कई नृत्य ऐसे हैं जो किसी अंचल या क्षेत्र विशेष में अधिक लोकप्रिय है । जैसे मारवाड़ में गैर और डांडिया नृत्यों की होली से बहुत पहले ही धूम मच जाती है । गिंदड़ नृत्य शेखावटी में अधिक लोकप्रिय है । रासमंडल, करौली, धोलपुर एवं भरतपुर अचल में अधिक महत्व रखते हैं ।

25.04.1 घूमर नृत्य

यह राजस्थान के नृत्यों में अत्यधिक लोकप्रिय है । यह घेरे में किया जाने वाला मोहक नृत्य है । महिलाऐं एवं युवतियां लोकगीतों जैसे 'म्हारी घूमर छ : नखराली ये मा य, घूमर रमन म्है ज्यास्या ' के साथ किया जाने वाले अत्यन्त रोमांच भरा नृत्य है । वैसे यह नृत्य गणगौर के पर्व से भी जुड़ा था लेकिन अब यह सभी त्यौहारों पर अपनी छटा बिखेरने लगा है । महिलाओं की कोमल भावनाऐं, उनके स्त्रीत्व का मुलायम स्वभाव आदि इस नृत्य के माध्यम से व्यक्त होता है । यह घड़ी की सूई (Clock wise) एवं इससे विपरीत दिशा में घेरे में लय के साथ घूमते हुए किया जाता है । बीच-बीच

में नृत्य के दौरान नर्तन करने वाली महिलाऐं या युवतियां आपस में एक दूसरे के हाथ पकड़ लेती हैं और फिर नृत्य में घुमाव के साथ मग्न हो जाती हैं । ढोल या वाद्य की लय के साथ कदम मिलाते हुए किया जाने वाले यह नृत्य मनमोहक होता है । राजस्थानी वेशभूषा के साथ त्वरित गति से नृत्यांगनाओं का जोड़े में हो जाना और फिर चक्र का अंग बन जाना, अद्भुत है यह केवल महिलाओं एवं युवतियों का अपना नृत्य है ।

पारिवारिक और सामाजिक उत्सवों पर उच्च और मध्यम वर्ग का लोकप्रिय नृत्य घूमर है । लोकगीतों के संकलनकर्ता ठाकुर रामसिंह, सूर्यकरण पारीख नरोतम स्वामी ने घूमर को लू का संस्करण माना है । इसका 'म्हारी घूमर छ : नखराली ए भाय, घूमर रमबा म्ये जास्या ' गीत ताल कहरवा मध्य लय का है । राग साल में भी इसकी अवतारणा और नृत्य सरंचना अद्भुत होती है । नृत्यांगनाएं राजपूती घूँघट काढे लहंगे -चोली- ओढनी में गोटे, जरी की सजावट के साथ घूमर प्रस्तुत करती है । इसके उलट बाडमेर का गैर नृत्य पुरुष नर्तकों की बानगी पेश करता है । यों यह मेवाड़ में भी लोकप्रिय है । इसे गुजरात के डांडिया का परिष्कृत रूप भी कहा जा सकता है । इसके नर्तकों के कुर्तों का घेर नीचे लहंगे की तरह होता है । नीचे चूड़ीदार पायजामा नुमा परिधान होता है यह मूल रूप से रेगिस्तान ओर मेवाड़ की योद्धा जातियों का नृत्य है । नर्तकों के हाथों में दो मजबूत छडियां, लाठियां होती हैं । उनके मध्य ढोल, बांकिया, थाली, वाद्यों का काम करते हैं । वे धीन धीनाधीन धीन धीना/नके नके नके, धीन की ताल निकालते हैं । नर्तकों द्वारा छड़ियों का संचालन और तलवारों की कलाबाजी का बेहतरीन प्रदर्शन होता है । बीच में गायक श्रृंगार, वीर और भक्ति रस रचनाओं की तान छेड़ते हैं । यह श्रृंगार रस का लोकप्रिय नृत्य है । इसके नर्तक अपने पैरों में घुंघरू भी बांधते हैं । इतिहासकारों का कहना है कि मध्यकालीन सामन्तों के यहां और उनके कुल देवताओं के मंदिरों से गैर नर्तकों की टोली नृत्य का रग बिखेरती थी । नृतक टोली मे देहात की सभी जातियों के युवक भाग लेते थे । कुछ स्थानों पर बांकिया ही जगह घौंसा बजाया जाता था । आज भी कुछ टोलियां घौंसा का इस्तेमाल करती हैं । नर्तकों का छडियां टकराने का अन्दाज मनमोहक होता है । यह छडियां टकराते हुए दो चक्कर सीधे और उलटे लगाते हैं । इसे डांडिया गैर भी कहा जाता है । वाद्यों में नफीरी, नगाड़ा भी बजाया जाता है ।

25.04.2 डांडिया या गैर नृत्य

होली के हुडका का रंग जमाता है 'डांडिया नृत्य ' । यह नृत्य पुरुषों द्वारा सामूहिक रूप से किया जाता है । विचित्र वेशभूषा का प्रदर्शन इस नृत्य की विशेषता है । इस नृत्य का आधार कृष्ण लीला अथवा 'रास ' है । पुरुष नृत्य करते समय हाथों में लकड़ी के डंडे रखते हैं जिन्हें आपस में विभिन्न प्रदर्शनों के साथ टकराते हुए गोलाकार वृत बनाते हुए चलते हैं । उनके पद्म प्रमुख वाद्य नगाड़े की आवाज के साथ चलते हैं तथा डफ, मंजीरे ओर बांसुरी भी नृत्य में माधुर्य का संचार करते हैं । यह नृत्य नगाड़े की थाप पर फाल्गुन के महीने में मंदिरों के सामने किसी समय अर्द्धरात्रि तक घूम मचाता था । विचित्र वेषभूषा में मोहक परिदृश्य उपस्थित करते थे ।

यह नृत्य मारवाड़ में अधिक लोकप्रिय है । यह भी घेरे में चलते हुए और नर्तकों द्वारा लय में अपने से आगे पीछे के पुरुषों से डंडिये भी आपस में ध्वनि पैदा करते हैं एवं वाद्यों की धुन में मिल जाते हैं । इस नृत्य के दौरान नर्तक अनेक प्रकार से गोले में पंक्ति (Pattern of Formation) बनाते

हुए नृत्य करते हैं । रोमांच बढ़ाने के लिए स्वांग रचते हैं । यह नृत्य धीरे-धीरे बढ़ता हुआ अति तेज गति ग्रहण करके मुग्ध कर देता है ।

भीलवाड़ा की 'घूमर गैर ' अत्यन्त लोकप्रिय है । यह एक तरह से महिलाओं की घूमर और पुरुषों के डांडिया रख गैर नृत्यों की खूबियों का मिलाजुला स्वरूप प्रस्तुत करता है । इन दोनों नृत्यों के मूल गुण अर्थात पद चालन (Steps) एवं संचालन (Action) का इसमें मिश्रण है । यह ढोल वाद्य के साथ किया जाता है । ढोल के साथ धौंसा एवं बांकिया जैसे वाद्य रोमांचक लय भर देते हैं ।

25.04.3 गींदड़ नृत्य

यह नृत्य शेखावटी में चक्र (Circle) में किया जाने वाला लोकप्रिय नृत्य है । केटलड्रम पर कहरवा की ताल पर नर्तक कई प्रकार के परिवर्तन या पेटर्नस के साथ यह नृत्य करते हैं । अपनी नृत्य शैली के कारण गींदड़ आश्चर्यजनक प्रभावों की सृष्टि करता है । यह होली के त्यौहार से जुड़ा हुआ नृत्य है । ढूंढाड़ के समीपवर्ती शेखावटी का ढफ और गींदड नृत्य फागोत्सव का हिस्सा है । गांवों में होली के पहले प्रहलाद का झंडा रोपा जाता है । रात्रि में चंग और नगाड़े गूंजने लगते हैं । नर्तकों के दल चंग पर फाग गाते और नाचते हैं ।

25.04.4 कच्छी घोड़ी का नृत्य

शादियों की शोभा है कच्छी घोड़ी का नृत्य जो मध्य काल की देन कहा जाता है । इसमें नर्तक अपनी कमर में घोड़ी की आकृतियां पहनकर नृत्य करते हैं । कच्छी घोड़ी का अर्थ है काठ की घोड़ी । यह राजस्थान का एक विशेष प्रकार का नृत्य है । जो बावरी कुम्हार आदि समुदायों का परम्परागत नृत्य है । इस नृत्य का उद्भव राजस्थान के शौर्य से जुड़ा है । चार या पाँच व्यक्ति दूल्हे की वेशभूषा में इस प्रकार प्रस्तुत किये जाते हैं मानो वे घोड़ों पर सवार है । टॉय हार्स या घोड़े का शरीर बाँस की खप्पचियों से बनाया जाता है । लकड़ी का सिर होता है । इन सबको सजाया जाता है । घोड़े की पूर्ण आकृति पर सवार दूल्हे मंच पर एक ओर से दूसरी ओर घोड़ियों के साथ नर्तन करते हुए जाते। ढोल. झालर एवं बांकिया वाद्यों एवं महिलाओं द्वारा गाये गीतों की धुन पर यह नृत्य चलता है । मारवाड़ के शेखावटी से लगा हिस्सा कच्छी घोड़ी नृत्य का भी विशिष्ट स्थान है । इसमें बांस की पतली लोचदार खप्पचियों के ताने बाने से घोड़ी का ढांचा तैयार कर सजाया जाता है । बीच में नृत्यांगना या नर्तक घोड़े के मुंह में रास थामे नृत्य करता है । नर्तक हाथ में नंगी तलवार रखता है । इतिहासकारों के अनुसार कच्छी घोड़ी नृत्य के दौरान लड़ाई का दृश्य सजीव किया जाता है ।

25.04.5 चरी नृत्य

यह नृत्य अजमेर क्षेत्र में माली समुदाय द्वारा किया जाता है । माली समुदाय परम्परागत रूप से फूलों एवं सब्जियों का व्यवसाय करते आये हैं यह महत्वपूर्ण पर्वों पर उत्सवों पर किया जाता हे । नृत्यागनाऐं सिर पर पीतल का बर्तन अर्थात् चरी रखकर उस पर दीप जलाकर नृत्य करती हैं । थाली और ढोल की लय पर रंग बिरंगी पोशाकों में नृत्यांगनाऐं यह नृत्य करती हैं । सिर पर चरी रखने के कारण इसको चरी नृत्य कहते हैं । यह अतिथि सत्कार के लिए भी किया जाता है! ऐसे में नृत्यांगनाऐं घूँघट में नृत्य करती हैं । चरी पर दीपक या जलते हुए कपास के बीच रखे हुए होते हैं। यह बांकिया एवं ढोलक की लय पर किया जाता है ।

25.04.6 भवई नृत्य

यह एक प्रकार से शारीरिक सन्तुलन कौशल (Acrobatic) प्रदर्शित करने वाला नृत्य है । यह नृत्य भवई जाति का अपना नृत्य है, जिसके नाम से ही नृत्य का नाम पड़ा है । कहते हैं कि अजमेर जिले में केकड़ी के नागाजी नाम के व्यक्ति को नृत्य में बड़ा चाव था । उन्होंने सिर पर एक के बाद एक बर्तन रखकर करतब दिखाने और शारीरिक सन्तुलन के इन कारनामों से सब को आश्चर्य में डाल दिया । भवई लोग अपने इन अद्भुत कारनामों से चकित कर देते हैं । सिर पर कई बर्तन रखकर कांच के गिलासों या कांच पर चलने आदि के कई कौशल दिखाते हैं । इनका सम्बन्ध शीतलामाता से भी जुडा है ।

भवई दरअसल, नृत्य एवं करतबों का ऐसा मिश्रण है जिसे देखकर दर्शक दांतों तले अंगुली दबा लेते हैं । यह भवई समुदाय का नृत्य है लेकिन आजकल अन्य समुदाय भी इस नृत्य का प्रदर्शन करते हैं । नौ या सात मिट्टी के घड़े या धातु के बर्तनों को सिर पर रखकर मुंह में तलवार लेकर, टूटे कांच के टुकड़ों पर नंगे पैर नाचने का यह अद्भुत नृत्य है जिसमें कौशल भी है और कला का पुट भी । सिर पर घड़ों या बर्तनों की कतार, मुंह में तलवार ओर नीचे रखी रूमाल ' या किसी अन्य ऐसी वस्तु को उठाना, कमाल के सन्तुलन का कार्य है जो इस नृत्य के द्वारा सम्पन्न किया जाता है ।

लोक नृत्यों की कड़ी में चरी नृत्य भी है । इसमें घड़ों की पालियों में जलते दीपक लिये नृत्यांगनाएँ सुर और लय स्व में तालियां बजाती हुई नृत्य करती हैं । उनका संयोजन, संतुलन अद्भुत होता है चरी नृत्य का समृद्ध पक्ष भवाई ने समेटा ण है । इसमें स्व ही कलाकार गायन वादन की द्रुत लय पर सिर पर आठ आठ घड़े रखकर नृत्य आरंभ करते हैं । कलाकार नृत्य के दौरान जमीन से कपड़ा उठाकर, थाली के किनारों पर नृत्य, कांच के टुकड़ों, धारदार तलवारों पर, गिलासों पर नृत्य करके दर्शकों को चकित कर देता है । इस नृत्य का अंग संचालन, भावाभिनय, पद संचालन और गायन शास्त्रीय नृत्यों के समकक्ष खरा उतरता है । मालवा और मेवाड़ में भवाई समुदाय की अलग ही पहचान है । इसमें नाटकीय तत्व की भरमार है ।

25.04.07 बामरसिया

बामरसिया लोकगीतों एवं लोकनृत्य का मिला जुला रूप है । नृत्य के साथ 'बाम ' नामक वाद्य का उपयोग किया जाता है । यह एक प्रकार का बड़ा नगाड़ा होता है । तीन लोग नगाड़ा बजाते हैं । यह होली के अवसर पर भरतपुर क्षेत्र में किया जाने वाला नृत्य है । ब्रज से लगे भरतपुर का बाम रसिया का अद्भुत है । इसमें बांस के मोटे डंडों से धौंसे बजाये जाते हैं । उनके साथ थाली, चिमटे, मजिरे आदि से संगत दी जाती है । नर्तक दल में केवल पुरुष होते हैं । वे रंग बिरंगे पगड़ी, जेबदार कमीज, ऊंची धोती पहने होते हैं । हाथों में सुन्दर, सजा हुआ पंखा होता है । प्रत्येक नर्तक अपने अपने घेरे में अलग अलग नृत्य करता है भरतपुर के संगीत दंगलों में बाम नर्तकों की ठुमकती टोली शास्त्रीय और लोक गीतों की धुनों पर रंग बिखेरती है । मजेदार यह है कि मेवात में भी बम नृत्य की गहरी पैठ है । बस अन्तर इतना है कि धौंसे, नगाड़े को टामक कहा जाता है ।

25.04.8 चारकुला नृत्य

यह नृत्य राजस्थान के बृज क्षेत्र से जुड़े भागों में लोकप्रिय है । इसको धातु के बर्तन एवं उस पर दीपक जलाकर, महिलाऐं अपने सिर पर रखकर नृत्य करती हैं । वे अपने हाथों में लोटा लिए होती हैं । आदमी इनके सामने ताली बजाते हुए नृत्य करते हैं ।

25.04.9. लंगुरिया नृत्य

यह करौली की कैलामाता जी के मंदिरों से सम्बद्ध नृत्य है । इस नृत्य में काल्पनिक पात्र होता है । नृत्य से जुड़े लोकगीत, लंगुरिया के नाम से सम्बोधित है यह भक्ति नृत्य है । जहां कैला मैया को प्रसन्न करने के लिए नृत्य और संगीत से भक्त झूम उठते हैं ।

25.04.10 चाक चांणी नृत्य

राजस्थान में अभिभावक दिवस पर परम्परा का प्रतीक लोकनृत्य है- चोक चांनणी नृत्य । यह नृत्य गणेश चतुर्थी के पर्व पर पाठशालाओं के छात्रों द्वारा विचित्र वेशभूषा का प्रदर्शन करते हुए किया जाने वाला नृत्य है । छात्रों द्वारा गुरु को अपने अपने घर ले जाकर दक्षिणा दिये जाने तथा नृत्य के साथ गणेश वन्दना किये जाने की परम्परा रही है।

25.04.11 लोक देवताओं के नृत्य

भक्त लोग घुंघरुओं की ध्वनि के साथ यह नृत्य करते हैं । भैंरु जी के भोपाओं द्वारा यह नृत्य किया जाता रहा है । यह भोपे विशिष्ट प्रकार की वेशभूषा पहनते हैं तथा लोकदेवताओं से संबंधित नृत्यों में प्रमुख है - गोगा जी एवं भैरू जी का नृत्य । गोगा जी का नृत्य गोगा नवमी के दिन प्रस्तुत किया जाता है ।

25.04.12 पणिहारी नृत्य

पणिहारी नृत्य पानी भरने जाते समय के भावों को दर्शाने वाला नृत्य है । यह श्रृंगार रस का नृत्य है । इस नृत्य का प्रमुख वाद्य घड़ा होता है । गांवों के शान्त वातावरण में महिलाऐं अपने पांवों में पायल पहनकर यह नृत्य करती हैं । पायल की रुनझुन और गीत की मीठी तान बरबस ही आकर्षित कर लेती है ।

25.04.13 गणगौर नृत्य

महिलाओ के महापर्व गणगौर पर किया जाने वाला यह सामूहिक नृत्य है । महिलाओं द्वारा प्रस्तुत यह नृत्य धार्मिक लोकनृत्यों की श्रेणी में आता है । इसमें ढफ तथा नगारा प्रमुख वाद्य होते हैं । नृत्य के साथ गणगौर की स्तुति गायी जाती है ।

25.04.14 नटों के नृत्य

नटों के नृत्य भी राजस्थानी लोक संस्कृति के अभिन्न अंग हैं । नटों के नृत्य में नृत्य कम होता है और करतब अधिक । यह दर्शकों को रोमांचित करने वाले नृत्य है । नटों के प्रमुख नृत्यों में मोर नृत्य, पताशों का नृत्य, पानी पर नृत्य, तलवारों पर नृत्य, दीपक नृत्य आदि है। इन सब नृत्यों का नामकरण इनकी नृत्य विधि और नृत्य की विशेषता के आधार पर है ।

25.04.15 कालबेलिया नृत्य

सांपों को अपनी बीन की धुन पर नचाने वाले और नाग देवता की पूजा करने वाले कालबेलियों का परम्परागत धंधा लगभग समाप्त हो गया है । अब सांपों को नचाने वाले, अपनी बीन की धुन पर परिवार के परम्परागत नृत्यों में पारगत युवतियों द्वारा पर्यटन विभाग या अन्य समारोहों के अवसर पर नृत्य प्रदर्शन करके गुजारा करते हैं । पुष्कर मेले में गुलाबों नामक युवती के नृत्य से प्रभावित होकर राजस्थान पर्यटन विभाग ने इसे अपने कार्यक्रमों का प्रमुख अंग बना लिया है । अब यह नृत्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों का अंग सा बन गया है और अनेक कालबेलिया युवतियां इन नृत्य से रोजी रोटी कमाने लगी है । नृत्यांगना राजस्थानी कुर्ती, कांचली, घाघरा ओर ओढनी अर्थात् सम्पूर्ण वेशभूषा काले रंग की पहनती है । इस वेशभूषा पर चमकीले गोटे ओर तारे जड़े रहते हैं । इस प्रकार के परिधान में बीन और वाद्यों की धुन पर नृत्यांगना तेज गति से नृत्य करती है । शरीर की लय, सिर को पीछे की ओर ले जाते हुए, मुंह से रूमाल उठाते हुए नृत्यांगना अपने कला कौशल को प्रस्तुत करती है । नृत्य में शरीर को सर्पनी की लोच की तरह बीन की धुन पर घुमाते हुए नृत्यांगना दर्शकों को रोमांचित कर देती हैं । यह राजस्थान के लोकप्रिय नृत्यों में से महत्वपूर्ण नृत्य बन गया है ।

25.05 राजस्थान के रोमांचक लोक नृत्य

राजस्थान के नृत्यों की श्रृंगार में जहा एक ओर मुलायम और मधुर संगीत, लय एवं लोच हैं । रूमानी राग रंग है तो दूसरी ओर इनमें भवई जैसे करतबों एवं कमालों के नृत्य है तो साथ ही तेज गति से घूमते हुए अद्भुत क्षमता का कमाल दिखाने वाले कंजरों के चकरी जैसे नृत्य भी है जहा नृत्यांगनाऐं सौ कली का घाघरा पहने हुए स्वयं डफ की ताल पर चकरी की तरह तीव्रतम गति से घूमते हुए रोमांच की सृष्टि कर देती हैं ।

अद्भुत एवं अविश्वसनीय लगने वाला अंगारों पर नाचने का अद्भुत कमाल दिखाता है । नाथ समुदाय का ' अग्नि ' नृत्य । यह नृत्य परम्परा की देन है और राजस्थान के सिरमौर नृत्यों में से एक है ।

25.05.1 कंजरों के नृत्य

कोटा से 125 किलोमीटर दूर चांचोड़ा में कंजरों की तीन बस्तियां हैं । वहा लगभग दो सौ परिवार कंजर परिवार रहते हैं । राजस्थान निर्माण से पूर्व कोटा रियासत में कुछ भाग टोंक के नवाबों के शासन में था । सम्भवत : अपराध प्रवृति वाले लोगों का उपयोग आसपास की रियासतों से बदला लेने या उन्हें परेशान करने आदि कामों में किया गया । ऐसे में लोग दूसरी रियासतों में चोरी करके अपनी रियासत में लौट आते थे । यह सिलसिला धीरे-धीरे उनके जीवन का अंग बन गया । इस प्रकार ऐतिहासिक रूप में एक समुदाय को अपराधी जीवन बिताने के कोई भी कारण रहे हों परन्तु पूरे समुदाय का अस्तित्व अपराधों तक केन्द्रित हो गया । यह जनजाति अपने ही दायरे में कैद हो गई और जहा यह समाज से पूरी तरह कटा हुआ समुदाय है अब इस घुमक्कड़ जाति ने डेरे छोडकर गांव बसाया है ।

कंजरों की कठोर जिन्दगी का एक मुलायम पहलू भी है -उनके नृत्य एवं गीतों की समृद्ध परम्परा । विवाहों और जन्म दिवस जैसे उत्सवों पर ग्रामीण परिवेश में जीविका कमाने के लिए नाचने तक कंजर नृत्यांगनाओं का पेशा रहा है । लगभग दो दशक पूर्व लोक कला मर्मज्ञ कोमल कोठारी ने छीपाबडौद

निवासी रशीद अहमद पहाड़ी को कंजरों के जीवन एवं नृत्यों आदि पर अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया था । पहाड़ी ने इस दिशा में काफी कार्य किया । राजस्थान संगीत नाटक अकादमी के नारायण सिंह साधु ने पहाड़ी के सहयोग से कंजर नृत्यांगनाओं के छाया चित्र लिए और गीत रिकार्ड किए । इसके बाद पहाड़ी ने फूला, लीलावती, चन्द्रकांता आदि कंजर बालाओं के नृत्यों का जयपुर, जोधपुर, उदयपुर आदि स्थानों पर नृत्य आयोजन किया । इन नृत्यांगनाओं के नृत्य रूस में आयोजित भारत समारोहों में भी किए गए ।

धीरे -धीरे इनके नृत्यों की धूम मचती गई । कंजर बालाऐं सौ कली का घाघरा पहनकर तेज गति से नृत्य करने की अद्भुत क्षमता रखती है । कहते हैं कि यह 15 घंटे तक लगातार नृत्य करने की क्षमता रखती है । कुशल वाद्य वादकों की संगत में ही नृत्य संभव है । नृत्य उनके जीवन का अभिन्न अंग है क्योंकि या जीविका का आधार भी है । कंजरों के नृत्य में सर्वाधिक लोकप्रिय और तीव्रगति वाला नृत्य, चकरी नृत्य है । इस नृत्य में कमर के बल नाचते नाचते नृत्यांगना तेज घूमने वाली चकरी की तरह बन जाती है और सौ कली का घाघरा छतरी की तरह तन जाता है । नाचते समय नर्तकियों के चेहरों पर मधुर मुस्कान बिखरी रहती है । काजलियां, पालना आदि गीतों के साथ यह नृत्य किया जाता है घोड़ी नृत्य और लहरी नृत्य भी इनके उत्कृष्ट नृत्य है । भद्दी मजाकों और फिकरे कसने के माहौल के बीच मीणा, गुजर, भील, लोधा आदि समुदायों के विवाहों में नृत्य कर अपना गुजारा करने वाली इन नृत्यांगनाओं के अद्भुत नृत्यों की देश विदेश में धूम मची हुई है । कंजर नृत्यांगनाऐं अपने अद्भुत नृत्यों एवं भाव भंगिमाओं से दर्शकों का मन स्व मोह लेती है । इनके नृत्य के साथ जो वाद्य वादक होते हैं वे भी डफ आदि वाद्य वादन में पारगत होते हैं ।

25.05.2 कामडों का तेरहताली नृत्य

राजस्थान में लोकसंगीत और लोकनृत्य दो रूपों में मिलते हैं । इनमें एक पेशेवर जातियों की परम्परा से जुड़ी हुई लोककला की धारा है और दूसरी सामुदायिक जीवन से जुड़ी हुई हैं । पेशेवर जातियों में रावल, डूंग, राणा, लगे, पातुर, भगतण, कलावतराव, भाट, ढाढी, भोपा आदि हैं । जिनमें अनेक पेशेवर गायक और कलाकार बदलते हुए परिवेश में परम्परा से कट गए हैं । भोपों में भी कई भेद हैं । माता जी, भैरू जी, बापू जी, रामदेव जी आदि के भोपे अलग-अलग होते हैं। और उनकी कला बानगी भी अलग अलग है । लोकदेवता रामदेव जी के भौंपों को कामड़ कहते हैं यह बाबा रामदेव । जी के भक्त होते हैं और रात भर रामसापीर के भजन, लीलाएं और यश गाथाऐं गाते हैं । कामड़ महिलाऐं गाने और तेरहताली नृत्य का प्रदर्शन करने में निपुण होती हैं । तेरहताली, तेरह मजिरों के माध्यम से ताल, लय प्रदर्शन का एक मोहक, कठिन, कलात्मक एवं रोमांचक प्रदर्शन होता है । मेघवालों या भाम्बियों को ये भोपे अपना जजमान मानते हैं । इनके साथ खाना पीना तो होता है लेकिन वैवाहिक सम्बन्ध नहीं ।

तेरह मंजिरों की निरन्तर चलती रहती संगीत ध्वनियों के बीच जमीन पर बैठे बैठे तो कभी लेटे लेटे कामड़ महिलाऐं तेरह प्रकार के भावांग प्रस्तुत करती हैं । सम्भवत: इसलिए इस नृत्य का नाम तेराताली या तेरहताली पड़ा । तेरहा मंजिरो में से नौ मजिरे दायें पाव पर बांधे जाते हैं दो हाथों के दोनों ओर तथा ऊपर कुहनी की जगह पर एक एक मंजिरा दोनों हाथों में रहता है । यह हाथ वाले मंजिरे ही अन्य मंजिरों से टकराते टन टन की ध्वनि देते हैं । पूरे प्रदर्शन में यह ध्वनि समान लय और गति

से चलती है और उसी दौरान कामड़ महिलाऐं विविध हाव भाव भी व्यक्त करती है । शरीर की ऐसी कठिन लोच एवं भावों की भगिमाऐं तथा मुद्राऐं कामंड महिलाओं के ही वश की बात है । इसके लिए कठोर साधना और परिश्रम की आवश्यकता होती है । जिस प्रकार नाथ समुदाय के लोग अपने आराध्य देव की कृपा से अंगारों पर नृत्य के रोमांचक करतब दिखाते हैं, शायद कामड़ महिलाओं के प्रदर्शन में उनके आराध्य देव रामदेव जी ही शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करते हैं कामड़ भोपे रामदेव जी को ही अपना सर्वस्व मानते हैं । तेरहताली प्रदर्शन के दौरान नृत्यांगनाऐं अपने सिर पर कांसे का थाल, और उसमें लोटा तथा उस पर दीपक रखे हुए होती है, मुहँ में नंगी तलवार रखकर बैठ कर शरीर को घुमाते हुए या लेटकर तेरहताली का प्रदर्शन करना अद्भुत है । एक कामड़ महिला या दो या दो से अधिक, एक साथ यह नृत्य करती हैं ।

प्रदर्शन के समय छानना, चक्की पीसना, अनाज कूटना, सूत लपेटना, सिर पर कलश रखना आदि आम जीवन से संबंधित भाव भंगिमाओं को नृत्य में व्यक्त किया जाता है । यह कामड़ भोपे पश्चिमी राजस्थान में मिलते हैं और वहां अपने कला कौशल का प्रदर्शन करते हैं । कामडों की बस्ती में रामदेव जी का मंदिर होता है जहा रात भर तेरहताली का प्रदर्शन किया जाता है । विवाह के अवसर पर भी तेरहताली का प्रदर्शन किया जाता है । चोतारा एवं खड़ताल के साथ नृत्य के समय संगीत रचना की जाती है ।

समय की धूंध में राजस्थान की अनेक पेशेवर जातियां अपनी कला के साथ विलुप्त होती जा रही है, कामड़ भी वर्तमान की इस त्रासदी से बचे नहीं हैं । भक्ति भावना में कमी के कारण भी कामडों की कला परम्परा को आघात पहुँचा है । राजस्थान संगीत नाटक अकादमी एवं राजस्थान पर्यटन विभाग ने लोकत्सवों के अवसर पर इनके प्रदर्शनों को प्रोत्साहित करके इस नृत्य कला को लोकप्रिय बनाने में योग दिया है ।

25.05.3 ढोल नृत्य

रेगिस्तान के ही जालोर जिले का ढोल नृत्य दूसरी पिछड़ी जातियों पीली, सरगड़ा, ढोली और आदिवासी भीलों को प्रिय है । इसमें आधा दर्जन ढोलवादक स्व विशिष्ट शैली में वादन शुरू करते हैं और ढोल पर थाप पड़ते ही नर्तकों का दल दौड़कर आता है । उनके हाथों में नंगी तलवारें, डंडे और दूसरे हथियार होते हैं । वे ढोल की ताल पर नकली लड़ाई की प्रस्तुति करते हुए नृत्य करते है ।

25.05.4 जसनाथी सिद्धों का अग्नि नृत्य

बीकानेर और चूरू के जसनाथी सिद्धों का दहकते अंगारों पर नृत्य वैज्ञानिकों के लिए रहस्यमय पहेली बना है । जसनाथी सिद्धों की कहानी बीकानेर की स्थापना से पूर्व कतरियासर गांव से संबंध रखती है । जहां जमींदार के बेटे जसनाथ को नाथ सम्प्रदाय के प्रणेता गुरू गोरखनाथ का साक्षात्कार हुआ । जसनाथ, नाथ गुरु के आशीर्वाद से सिद्ध हुए । उन्होनें बीकानेर के पास समाधि ली । कहा जाता है कि अग्नि नृत्य का आरंभ जसनाथ ने किया ।उनके चले रात भर जागरण के समय गुरु जसनाथ के पद्चिन्हों पर चलते हुए लकड़ी का धूणा लम्बी खन्दक में जलाते हैं । खन्दक में लकडों के दहकते अंगारों के एक किनारे गुरु जसनाथ के गायक शिष्य राग रागनियां छेड़ते हैं । उनका साथ नगाड़ा - मंजीरों की संगत से दिया जाता है । गायक का आलाप और वाद्यों की ताले द्रुत होते होते जसनाथी फतै फतै का उद्घोष करते हुए जलती आग की ओर बढ़ते हैं । वे नाचते हुए जलती आग को पार कर

जाते हैं । आश्चर्य यह है कि आग का उनके शरीर पर कहीं कोई प्रभाव नहीं होता । उनके नृत्यों का प्रदर्शन जोधपुर, चूरू, बीकानेर में देखने के लिए भारी भीड़ उमड़ पड़ती है ।

अग्नि नृत्य प्रसिद्ध जसनाथी सिद्ध सम्प्रदाय भक्तों द्वारा किया जाता है । जैसा कि नाम से ही पता चलता है कि यह नृत्य आग से संबंध रखने वाला है । इसमें नर्तक अंगारों पर नंगे पांवों नृत्य करता है । नृत्य करने से पहले अंगारों को जलाकर तैयार कर लिया जाता है तथा जमीन पर बिछा दिया जाता है । तत्पश्चात् ढोल की ध्वनि से तालमय नर्तक उसके चारों ओर घूमते हुए नृत्य प्रारम्भ करते हैं । साथ ही सम्प्रदाय की विशेष स्तुति भी गायी जाती है । धीरे-धीरे लय बढ़ती है तब नर्तक अंगारों पर नृत्य करना प्रारम्भ कर देते हैं । यह नृत्य मुख्य रूप से माघ, चैत्र और अश्विन माह की शुक्ल पक्ष की सप्तमी को ही आयोजित किए जाते हैं क्योंकि उस समय सिद्ध सम्प्रदाय में प्रमुख पर्व होते हैं ।

25.0 6 आदिवासियों के लोक नृत्य

राजस्थान के आदिवासियों का एक अलग ही संसार है । युगों से मनुष्यता का बोझ उठाये ये आदिवासी भले ही बागड़ के भील-मीणा हो या कि आबू के गिरासीया हों या फिर शाहबाद के सहरिया, अपनी अपनी विशेषताओं के कारण अलग अलग पहचान रखते हैं । ये आदिवासी स्वभाव से भोले और सरल होते हैं ।

इन विभिन्न आदिवासियों की अपनी पहचान के अपने लोक गीत एवं लोकनृत्य होते हैं । इनकी अपनी खास सांस्कृतिक पहचान एवं विशेषताऐं होती हैं । ये कठोर परिश्रम के साथ अपना जीवन यापन करते हैं ।

मेलों और त्यौहारों पर भील पुरुष एवं महिलाऐं रात रात भर नाचते रहते हैं । ये घूमर लेते हैं । होली पर गैर रचते हैं । भील युवक एवं युवतियां बड़े श्रृंगार प्रिय होते हैं । कहते हैं भील जात में ढोल को घणों मोल हैं अर्थात् ढोल की आवाज से ही वे दूर दूर बसे अपने लोगों तक संदेश पहुंचाते हैं । ढोल की आवाज से वे पहचान जाते हैं कि क्या बात है ? विवाह का सन्देश देने वाला हथेलियाँ ढोल तथा अचानक आफत आने पर हाजरी ढोल बजता है । किसी की मृत्यु पर मरदेनी आवाज में ढोल बजता है और आदिवासी एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं ।

डूंगरपुर, बांसवाड़ा, कोटा एवं बूंदी का नाम भील सरदारों क्रमश : डूंगीया, बांसिया, कोदया बुन्दा आदि के नाम से पड़ा है । भीलों के मेलों में, बेणेश्वर एवं सीताबाड़ी के मेलों में इन की धूम मच जाती है । इनके गीत, संगीत एवं नृत्यों का नजारा चकित कर देता है । होली भी इनका महत्वपूर्ण त्यौहार है । ये जोगणमाता को समर्पित इनके होली उत्सव पर पुरुष नर्तक 'गोसाई ' नृत्य के लिए बुलाये जाते हैं । मीणा, गाड़िया, लुहार, गरासिया, डामोर, भील मीणा, सहरिया आदि सबके अपने लोक नृत्य एवं गीत होते हैं ।

25.06.01 गरासियों के नृत्य

अरावली की गोद में बसे गरासिया आदिवासियों का अपना रोचक संसार है । सालभर पहाड़ों पर अपने गांवों में एकरस जीने वाले गरासिया आदिवासी चामन देवी एवं आमल्या के वार्षिक मेलों में मिलते हैं । युवतियां एवं युवक सजधज कर समूह में आती है और उन्मुक्त वातावरण में उन्मुक्त रूप से नाचते गाते हैं । आमल्या में होली के बाद इनका मेला होता है ।

25.06.02. गणगौर के नृत्य

गरासिया आदिवासी बड़े रंगीले होते हैं । घर की स्त्रियां ही परिश्रम करके आजीविका कमाती हैं आदमी आलसी होते हैं लेकिन कपड़े पहनने एवं नाचने गाने के बड़े शौकीन होते हैं । गणगौर गरासियों का प्रमुख त्यौहार है । गरासिया इस अवसर पर गबरा या गौरी तथा महादेव शिवजी की सवारी निकालते हैं । जुलूस में ढोल, ताली और 'मादल' बजाते हैं । आगे आगे गरासिया नर्तन करते हैं । इसमें 'हाथी का तमाशा' भी करते हैं ।

गिरासिया आदिवासी एक जीवन्त एवं रंगों भरे वनवासी हैं । ये अरावली के तलहटी अर्थात् माउन्ट आबू एवं सिरोही जिले में वास करते हैं । गरासिया महिलाऐं रंग बिरंगी ऐसी पोशाकें पहनती हैं जो राजपूत महिलाओं की पोशाकों के समान अति आकर्षक होती हैं । गरासियों का नृत्यों के प्रति बड़ा चाव है ।

गरासियों के नृत्यों में महिलाओं का घेरे में किया जाने वाला नृत्य है । इसमें विभिन्न पद संचालन (steep or Movement) है । यह गरासिया महिलाओं का नृत्य है । एक सुन्दर बालक के बारे में गीत 'नानु हार्वारिमुन ' के साथ किया जाने वाला नृत्य है । इसमें नृत्यांगनाऐं उठती और बैठती रहती हैं । 'बैठन दे भाई बैठन दे ' अठन दे भाई अठन दे ' जैसे बोल होते हैं ।

ऐसे की एक अन्य नृत्य में 'बावा म्हारा भार जोबन ' जैसे बोल भी गाये जाते हैं ।

25.06.3 वालर नृत्य

गरासियों का वालर नृत्य सर्वाधिक लोकप्रिय है । गरासिया पुरुष एवं महिलाऐं रेल्वे इंन्जिन से जुड़े से डिब्बों की कतारें बना लेते हैं । नीले मोर 'लाल मोरिया ' अन्य लोकगीतों की पुन पर यह नृत्य किया जाता है । इसे 'गरासिया घूमर ' भी कहते हैं । 'पडियों कोढी काल ' जैसे गीतों के साथ यह सम्पन्न होता है ।

25.06.4 मोरिया थाई रै थाई

मोरिया थाई रै थाई ' गीत के साथ किया जाने वाला गरासिया महिलाओं का लोकनृत्य भी रोचक माना जाता है। गीत में दुल्हे की प्रशंसा होती है । गोलाकार के केन्द्र में प्रमुख गायक होता है और महिलाऐं उसके इर्द गिर्द नृत्य करती है।

25.06.5 मादल नृत्य

मादल वाद्य के साथ किये जाने वाले नृत्य 'मादल ' कहलाते हैं । इनमें पुरुष और स्त्रियां गोला (Circle) बनाकर नाचते हैं । नगाड़ा, ढोलक, झालर और थाली के वाद्यों की धुन पर यह नृत्य किया जाता है ।

25.06.6 सहरिया का नृत्य

सहरिया आदिवासी बांरा जिले के किशनगंज, शाहबाद इलाके में रहते हैं । शहरों की आबादी से दूर अलग बस्ती में रहते हैं जिसे सहराना कहा जाता है । हर सहराना के बीच चबूतरा या छतरीनुमा

मकान होता है । जिसे पंचायती बंगला, कहते हैं । इसमें सभी सहरिये मिलकर मनोरंजन करते हैं । झगड़ों का निपटारा भी करते हैं ।

सहरिया महिलाऐं घाघरा, ओढनी एवं रंग बिरंगी पोशाकें पसन्द करती हैं । विवाह, शादी एवं अन्य त्यौहारों पर स्त्री पुरुष, युवा एवं युवतियां गोलाकार में नृत्य करते हैं । 'सजना आये, हमरे मन भाये, बड़े बड़े सोन बिचारै मौरे राम, जैसे गीत होते हैं । पुरुष विवाह के समय गीत और रसिया गाते हैं । ये अपने आप में समाज से कटकर अलग रहते हैं । स्वभाव से सरल होते हैं और इनके नृत्य धीमी गति के होते हैं ।

25.06.7 भीलों का शत नृत्य

भील वृत में घूमते हुए नृत्य करते हैं । पुरुष एवं स्त्रियां मिलकर नृत्य करते हैं । नगाड़ा, ढोलक एंव झालर की धुनों पर ये झूमते और नाचते हैं । इस नृत्य में मंडल अर्थात् गोलाकार में नृत्य होता है । इसलिए इसे मंडल नृत्य कहते हैं। इसमें तालियों की थाप एवं निश्चित लय एवं पेटर्न होता है । हाथ में रुमाल या अन्य कपड़ा लेकर नृत्य किया जाता है । घूमने, मुड़ने रम्य कदम का संचालन निश्चित होता है । पिडवाड़ा (सिरोही) के भील इस नृत्य का संचालन अलग प्रकार से करते हैं ।

आदिवासी नृत्यों में भीलों के 'घूमारा' नृत्य का रंगरूप गरासियों के 'बालर' नृत्य के समान होता है । ऐसा ही नृत्य रूप दक्षिण पूर्वी राजस्थान के बांसवाड़ा के भीलों में भी पाया जाता है ।

'गैर नृत्य ' भी इस तरह गोलाकार में किया जाने वाला मेवाs के भीलों गत होली पर किया जाने वाला नृत्य है । बांसवाड़ा जिले के कुशलगढ़ के भीलों का भी पांच अलग-अलग पद संचालन (Steps) का ढोल की थाप पर किया जाने वाला गैर नृत्य है । भीलवाड़ा क्षेत्र में घड़ी की उल्टी एवं सीधी दिशा (Clockwise & Anti clockwise) संचालन से घूमते हुए किया जाने वाला नृत्य 'घूमर गैर कहलाता है ।

25.06.8 गबरी नृत्य

भीलों का गबरी नृत्य अति लोकप्रिय है । यह वर्षा ऋतु अर्थात् अगस्त में पूरे माह किया जाने वाला नृत्य है जो पूरे आदिवासी क्षेत्रों में प्रचलित है । इस नृत्य के केन्द्र बुरिया अर्थात् शिव है । यह विवाह के समय किया जाता है । कई समाजिक, धार्मिक एवं मनोरंजक प्रसंगों की श्रृंखला के सन्दर्भ में यह नृत्य किया जाता है । जैसे एक प्रसंग है 'कान गुजरी' । यह भी घेरे या गोलाकार में सम्पन्न होने वाला नृत्य है । नृतक एन्टीक्लाक वाईज घूमते हैं ओर 'बुरिया ' पात्र इनकी विपरीत दिशा में घूमता है । 'मांदल' और' थाली' की लय एवं धुन पर यह नृत्य किया जाता है ।

फसल के समय आदिवासी नाचते गाते और हर्ष मनाते हैं । भीलों का गबरी लोकनृत्य अति लोकप्रिय है । मां गौरी या 'गवरी' की आज्ञा लेकर भील 'गवरी' 'घालते' अर्थात यह नृत्य करते हैं । कष्टों एवं परेशानियों से हटकर महीने सवा महीने तक ये भील, नृत्य के माध्यम से मनोरंजन करते हैं । यह आदिवासियों का अति प्राचीन लोकनृत्य है । 'गबरी नृत्य ' के प्रमाण पुराणों तक में मिलते हैं । शिव को भील आदि देव मानते हैं । गबरी नृत्य में गौरी के प्रति शिव एवं भस्मासुर का नाश करने वाले शिव के प्रसंग चलते हैं । 'राया ' शिव की शक्ति स्त्रियां 'पार्वती' और 'भील' शिवजी के गण बन

जाते हैं । यह नृत्य रात भर चलता है । इस नृत्य के द्वारा भील अपनी संस्कृति की प्राचीनता का प्रमाण देते हैं । (गबरी पर विस्तार से अध्ययन इकाई स. 26 में उपलब्ध है ।)

25.07 इकाई सारांश

इस प्रकार, लुप्त सरस्वती नदी वाले थार के रेगिस्तान में धोरे, टीले, हवा की रफ्तार के साथ लय बद्ध नर्तन करते हैं 1 उनकी थिरकन अरावली के इस पार सुरम्य घाटियों, मैदानों में नोचता मयूर बन जाती है । यही वजह है कि प्रदेश के रंगारंग लोकनृत्य लोकजीवन का पर्याप्त बन गए हैं ।

राजस्थानी लोकनृत्यों की विविधता में सभ्यता के विकास क्रम के इतिहास की आकर्षक रंगीन झांकी देखने को मिलती है । महाभारत कालीन बर्बरीक (बवरूवाहन) श्याम का मंदिर के नृत्य विशिष्ट है । गुफाओं में मिले चित्रों में शिकारी नृत्य की झलक देखने को मिलती है । उल्लेखनीय यह है कि जैसलमेर में 18 करोड़ वर्ष पुराने जीवाश्म मिले हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में नृत्यों का रोचक विवरण मिलता है । उनमें अप्सराओं, गन्धर्वों के उल्लास का ब्यौरा है । हरिवंश रामायण, महाभारत में उत्सवों - राजप्रासादों के भव्य नृत्य रोमांचक है । डा. कपिला वात्स्यायन नृत्य के गोल घेरों में होने का सम्बन्ध सृष्टि से जोड़कर देखती है । पिछले ढाई हजार वर्षों में जैन और बौद्धकालीन जनपदों से आदिवासी कबीलों तक और उसके बाद के नृत्यों की गुरु शिष्य परम्परा ने जीवित रखा है ।

राजस्थान के इतिहासकारों का कहना है कि सातवीं शताब्दी तक आदिवासी राजाओं के छोटे राज्यों की भरमार थी। उस समय के लोग देवी देवताओं को रिझाने के लिए आदिवासी युवक युवतियां छोटे कदम भरते हुए नृत्य करते थे । इनका ही चमत्कारिक प्रदर्शन भील, गरासिये, सहरिये, कथोडिया आदिवासी करते हैं । वैसे घुम्मक्कड जातियों बनजारों, कन्जरों, कालबेलियों, सपेरों, सांसियों, गाड़ियां लुहारों के नृत्य आदिवासी संस्कृति से अधिक प्रभावित नजर आते हैं । इनमें लवंगों का लूर और नाग जाति का तेरहताली विदेशों से आया और पश्चिमांचल के आंचल में सिमटा हुआ है । गुजरों के नृत्य पश्चिमी एशिया के प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं । इतिहासकारों के अनुसार पश्चिमी एशिया की प्राचीन सांस्कृतिक जातियों ने नृत्य की रक्षा के लिए सरस्वती नदी के दरिया वाले रेगिस्तान की शरण ली । प्रदेश के दूसरे लोक नृत्यों में युद्ध कौशल की प्रस्तुत मोहक होती है ।

क्षेत्रीय लोकनृत्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान पूर्वी राजस्थान के ढूंढाड के घूमर, बाडमेर, मारवाड़ के गैर, रामदेव जी की तेरहताली और बीकानेर के सिद्धों का अग्नि नृत्य. नागरचाल के करौली का लांगुरिया नृत्य, बृज अंचल भरतपुर का बम नृत्य आदि हैं । राजस्थानी लोक नृत्यों की शान लूर, जोधपुर का डांडिया, एकलिंगजी के यहाँ डांड, झूमर, टांटिया और घूड़ला नृत्य है । लंगों के लूर नृत्य के नृत्याचारों का उल्लेख तटशीला में भी मिलता है । यह सिन्धु घाटी के दक्षिण एशिया और मारवाड़ तक अपना प्रभाव रखता था । कुछ विद्वानों के अनुसार सोवियत संघ के कजाकिस्तान गणराज्य में भी लूर नृत्य लोकप्रिय है । लूर में युवक युवतियों के समूह एक दूसरे की तरफ देखते हुए कतार में खड़े होते हैं। इसमें नृत्यांगना-नर्तकों के शरीर की लय और गति आश्चर्य चकित करने वाली होती है । नर्तकियां अकेले ही लूर करती है । राजस्थान उनका गतिमय प्रश्नोत्तर, पद संचालन बहुत ही प्रभावशाली होता है । लोक नृत्यों में तेरहवीं सदी के वीर पुरुष नायक पाबूजी के की फड़ के सामने भौंपे भौंपियों का नृत्य अनूठा और भक्ति भाव लिए होता है ।

25.08 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये :-

(1) राजस्थान के लोक नृत्यों का क्या महत्व है? विश्लेषण कीजिए ।

(2) गरासियों की जीवनशैली और नृत्यों पर प्रकाश डालें ।

(3) आदिवासी नृत्यों की विवेचना कीजिए ।

(4) पश्चिमी राजस्थान के किसी प्रसिद्ध लोक नृत्य पर प्रकाश डालिये ।

(ब) निम्न प्रश्नों को उत्तर 150 शब्दों में दीजिये: -

(1) 'घूमर' नृत्य क्यों प्रसिद्ध है? स्पष्ट कीजिए ।

(2) 'गैर नृत्य' कब और कहा होता है?

(3) बीकानेर की जसनाथी सिद्ध सम्प्रदाय के अग्नि नृत्य की विवेचना कीजिए ।

(4) ढोल नृत्य पर प्रकाश डालिये ।

इकाई सं. 26 "रंग मंच एवं लोक नाट्य''

इकाई संरचना

26.01 उद्देश्य
26.02 प्रस्तावना
26.03 रासलीला
26.04 रामलीला
26.05 रासलीला एवं रासधारी
26.06 ख्याल
26.07 रम्मत
26.08 गवरी
26.09 फड़
26.10 भवाई
26.11 इकाई सारांश
26.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

26.01 उद्देश्य

राजस्थान लोक नाट्यों की परम्परा में बहुत समृद्ध रहा है एवं राजस्थानी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इस पक्ष का अध्ययन आवश्यक है प्रस्तुत इकाई आपको निम्न विशेषताएँ बतलायेंगी।

(1) लोकनाट्य परम्पराएँ व रंगमंच की अवधारणा कितनी प्राचीन है व स्थानीय जनजीवन से जुड़ी हुई है ।

(2) लोक नाट्य परम्परा आदिवासी, ग्रामीण व नगरीय संस्कृति का अंग है ।

(3) इनके विषय कौन-कौन से हैं तथा इसमें अभिनय, नृत्य व संगीत का सगम किस प्रकार है ।

(4) रंगमंच व लोक नाट्य कितनी शैलियों व बोलियों के हैं ।

26.02 प्रस्तावना

पाठकों एवं विद्यार्थियों हमने इसी पाठ्यक्रम की प्रथम पुस्तक (भाग-5 इकाई 32) में भारतीय रंगमंच के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला था एवं एक अन्य इकाई न. 33 में लोकनाट्यों को भी पर्याप्त महत्व दिया था । जहा एक ओर रामलीला एवं रासलीला जैसे परम्परागत रंगमंच परम्पराओं को उचित स्थान दिया वहीं दूसरी ओर प्रदेश की सांस्कृतिक परम्पराओं को सम्मान देते हुए ख्याल, रम्मत, फड़ जैसी लोकधर्मी गतिविधियों को सराहा । स्वाभाविक है कि इस इकाई में उन सबका पुन: स्मरण करना होगा परन्तु इस बार अधिक विस्तार से तथा स्थानीय आकांक्षाओं के संदर्भ में । वैसे भी ख्यात एवं रम्मत जैसी गतिविधियों को कुछ बिन्दुओं में समेटा भी नहीं जा सकता ।

राजस्थान के सामन्तीकाल में लोक नाट्यों एवं अन्य प्रदर्श्य-कलाओं को पूर्ण प्रोत्साहन एवं संरक्षण मिला । सामन्ती समाज के ढांचे में दूसरी बात यह हुई कि बहुत सी लोक कलाए विशिष्ट जातियों में सिमट गयी एवं पेशेवर लोगों का प्रचलन बढने लगा । हां, यह सत्य है कि पेशेवर लोगों का यह कला व्यवसाय दरबारों तक सीमित नहीं रहा बल्कि धीरे- धीरे जन जन तक पहुँच गया । यह एक सामुदायिक जीवन की सम्पत्ति बन गया । आदिवासी क्षेत्रों में तो यह उनकी परम्पराओं का खजाना हो गया । यहाँ यह स्पष्टीकरण भी आवश्यक है कि मध्ययुग में जो रास, चर्चरी, फागु आदि खेल खेले जाते थे उन्हीं का आगे चलकर ख्याल, स्वांग एवं नौटंकी आदि शैलियों में हम क्रमश : रंग मंच लोकनाट्यों का क्रमवार विवरण प्रस्तुत करते हैं ; -

26.03 रासलीला

प्रदेश में रासलीला, रामलीला, समया रासधारी, कानगुजरी और दशावतार लीला प्रमुख रूप से खेली जाती है । ऐसी मान्यता है कि रासलीला का लोकजीवन में प्रारम्भ 19 वीं शताब्दी में कुमावतों के द्वारा किया गया है । उगारियावास परम्पराएँ के प. शिवलाल ने रासलीला को संगीत और ताल के साथ विविध राग रागिनियों में उतारा तथा नृत्यों को शास्त्रीय स्वरूप प्रदान किया । शिवलाल जी के परिवार में बाद के लोगों ने भी रासलीला में बहुत यश कमाया । रासलीला में मुख्यत मूल रास तथा अंशरास दिखाये जाते हैं । मूल रास में कृष्ण तथा राधिका की झांकिया दिखायी जाती है और अंशरास झांकियां प्रस्तुत की जाती है । इसमें भाग लेने वाले सभी अभिनेता स्वरूप कहलाते हैं । राजस्थान में भी रासलीला के अन्तर्गत पांवों के टुकड़े निकालते हुए उठक बैठक निकालते हैं और घुटनों की सहायता से चकरियां भरते हैं । मुख सज्जा के लिये हल्दी, चन्दन, मुरदासिंगी एवं परेवा का प्रयोग किया जाता है ।

राजस्थानी रासलीला संस्थाओं के नियन्त्रण के स्थान पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों के संरक्षण में अधिक विकसित हुई । इसमें नृत्य संगीत का कला पक्ष प्रबल है । रासलीला के लिये फुलेरा, जयपुर, गुड़ा, बाबोसा, ढीढा, प्रमुख केन्द्र रहे हैं।

26.04 रामलीला

राजस्थान में रामलीला की कथा के विविध रंगमंचीय विवरण प्राप्त होते हैं । जिनका संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण इस प्रकार है । शेखावटी के बिसाऊ की रामलीला बहुत चर्चित है यहां की रामलीला प्रारम्भ से अन्त तक मूकाभिनय में चलती है। रामलीला के अन्त में फतेहपुर के दारूगरों द्वारा बनाये पुतलों में आकर्षण आग लगायी जाती है । सायं पांच से सात बजे तक रामायण की चौपाइयां बोली जाती है और उसके संकेत निर्देश पर मंच के पात्र आचरण करते हैं ।

पाटूंदा की रामलीला भी बहुत प्रसिद्ध है । चैत्र सुदी पंचमी से प्रारम्भ होकर बैसाख बदी तृतीया तक यह लीला हाडौती बोली में प्रदर्शित की जाती है । इस मध्य कई निकासियां निकलती हैं एवं झांकियां प्रदर्शित की जाती है । भजनों की स्वर लहरियां देखने को बनती हैं । लीला के साथ वाद्यरूप में चिंकारा, कमायचा, सारंगी, मंजीरे व ढोलक बजाये जाते हैं । पाटूंदा के अलावा अब यह हाडौती सम्भाग में मांगरोल, सीसवाली, पीपलदा, कापरेण, कनवास, जोलपा आदि गांवों में भी फैल गयी हैं ।

भरतपुर की रामलीला का सूत्रपात 1908 ई. में तत्कालीन राजमाता के संरक्षण में पं. माया शंकर जी एवं वैद्य गोपालजी ने किया और अब यह वैंकटेश मंदिर में खेली जाने के कारण 'वैंकटेश रामलीला ' के नाम से जानी जाती है । इस लीला में साज सान्जिदे नहीं होते, नृत्यपक्ष भी कमजोर है । इसमें अभिनेता स्वयं ही गायकी द्वारा अपना मंतव्य प्रस्तुत करता है । इससे यह लीला बहुत प्रभावशाली बन जाती है । रंगमंच पर प्रभावशाली दृश्य प्रस्तुत करना इसकी दूसरी विशेषता है । विशेष घटनाक्रम पर सवारियों के निकालने का आयोजन भी किया जाता है । भरतपुर के साथ साथ कामा, डीग दौपुरा की मंडलियां भी रामलीला का खेल खेलती हैं । करौली में मथुराशैली की विशिष्टता है । रामलीला पूरे महीने चलती रहती है । विशिष्ट प्रसंगों पर भव्य रंगमंच तैयार किया जाता है । फुलेरा की रामलीला विशुद्ध धार्मिक है । जयपुर तो रामलीला की मंडलियों से भरा हुआ है । बेणेश्वर के मेले के बाद साद लोगों की रामलीला भी चर्चित है । राजस्थान प्रदेश में रामलीला का विषय कथानक तुलसी रचित रामचरितमानस ही है ।

रामलीला या श्रीराम के जीवन के दृश्यों को दिखाने के लिये अन्य प्रकार के रंगमंच भी हैं । जिसमें समया मुख्य है जहाँ संवादों के माध्यम से प्रभावित दृश्यों को प्रस्तुत किया जाता है । लीलाओं का सिलसिला काफी लम्बा है । घोसूण्डा एवं बस्सी की लीलाएं उल्लेखनीय हैं । घोसूण्डा में नरसिंह अवतार की लीला है वहीं बस्सी में स्वांग रचकर झांकिया निकाली जाती हैं । जिसमें सभी देवताओं के स्वांग भरे जाते हैं ।

26.05 रासलीला एवं रासधारी

स्थानीय रंगमंच के लिये श्री राम एवं श्री कृष्ण के जीवन से जुड़ी मुख्य घटनाओं के अतिरिक्त भी उनके जीवन से तथा अन्य देवताओं के जीवन से जुड़े विषय थे; जिनकी ओर शनैः शनै ध्यान दिया जाने लगा । फिर पौराणिक संस्कृति के विस्तार ने विविध विषय प्रदान कर दिये । जैसे श्री कृष्ण के जीवन से जुड़े (महाभारत के अतिरिक्त) कालीदहन लीला, माटी-मक्खन खावन लीला, माखन चोर लीला, गोर्वधन लीला, भगवान विष्णु से जुड़ी भक्त प्रहलाद लीला, राजा हरिश्चन्द्र लीला, लोकदेवता रामदेव जी की लीला, आदि आदि । रासलीला वालों ने रामायण के वनगमन, रावण सीता हरण प्रेरक प्रसंगों के ऊपर भी लीलाएँ मंचित करनी प्रारम्भ कर दी । ऐसी धारणा है कि ये लीलाएँ रासधारी के नाम से लोकप्रिय इकाई होने लगी और संभवत : यह सर्वप्रथम गोड़वाड़ क्षेत्र में प्रारम्भ हुई । रासधारी का 'ख्याल ' के रूप में प्रदर्शन देने का श्रेय मेवाड़ निवासी मोतीलाल जी को जाता है । इनके द्वारा रचित राम लीला, चन्द्रावल लीला, हरिश्चन्द्र लीला आदि ख्याल ' बड़े प्रसिद्ध हुए है ।

पाठकों जब रासलीला एवं रासधारी दोनों शब्दों का प्रयोग रंगमंच में एक सी गतिविधि में होने लगा है तो स्वाभाविक है कि उसके मूल अन्तर को समझा जाये । स्थूल रूप से रासलीला में राधा-कृष्ण 'तथा गोपियों की लीलाएँ दिखायी जाती हैं जबकि उसके स्थान पर रासधारी में मुख्यत : रामजी के जीवन की झांकियां दिखायी जाती हैं । रासलीला में नृत्य, पात्रों की बहुलता परिधान की भव्यता एवं अंग भंगिमाओं भी विविधता देखी जाती है । संक्षेप में वे नृत्य नाटिकाएँ भी हो सकती हैं । वहीं रासधारी मच पर संवादों एवं कथा वस्तु को पात्रों के भावों से प्रस्तुत करने का कार्य सम्पन्न होता है । रासधारी मच में वाद्य-वादन की महिमा अवश्य बनी रहती है । गीत भी गाये जाते हैं । इन लीलाओं के अतिरिक्त

कहीं-कहीं पर दशावतार लीलाओं का प्रचलन भी है जो भगवान विष्णु के दस अवतारों की गाथाओं से सम्बन्धित है ।

कान गूजरी लीला

गूजर एवं भील समुदाय के लोग मर्दों एवं औरतों का वेष धारण करते हुए ऐसा ही चेहरा सजाते हुए अथवा मुखौटा ओढे हुए लीलाएं खेलते हैं । इनका स्वरूपिया रावणहत्थे परअपने गीत गाता हुआ स्वयं को राधाकृष्ण का मिला जुला अवतार बतलाता है । भील लोग इन लीलाओं में आँख-मिचौली का खेल भी खेलते हैं ।

26.06 ख्याल

ख्याल का कथ्य सम सामयिक होता है अर्थात् ख्याल की कथावस्तु किसी भी समसामयिक घटना चाहे वह सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक हो, की स्थितियों पर केन्द्रित होती हैं राजस्थानी लोक नाट्यों की ख्याल शैली का इतिहास कहा से प्रारम्भ होता है, अनुसंधान का विषय है । सभवत : पिछली शताब्दी (19 वीं) के मध्य के आसपास यह नाट्यक्रम प्रारम्भ हुआ है । कुचामण वालों का अपने ख्याल के बारे में यह कहना है कि 19 वीं शताब्दी के बीतते बीतते यह परम्परा सुदृढ़ हो चली थी । यह लोकनाट्य परम्परा स्थान विशेष के फलस्वरूप विभेद एवं विशेषता रखती है जैसे, कुचामणी ख्याल, बीकानेरी ख्याल, चिड़ावा ख्याल, जयपुरी ख्याल, नौटंकी ख्याल, अली बक्शी ख्याल, तुर्रा कलंगी ख्याल, किशनगढ़ी ख्याल आदि, आदि । महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ये सभी ख्याल बोलियों में ही भिन्न-भिन्न नहीं हैं बल्कि अपनी शैलियों में भी विशिष्टता रखते हैं । जैसे कुछ ख्यालों में नृत्य की प्रधानता है तो कुछ में संगीत अथवा संवादों की ।

कुचामणी ख्याल

ऐसी मान्यता है कि ख्याल का प्रदर्शन नागौर जिले के कस्बे कुचामण से ही प्रारम्भ हुआ । लच्छीराम नाम के नाट्यकार ने इस शैली को प्रसिद्धि दिलायी । श्री हमीदुल्ला ने इस शैली की निम्न विशेषताएँ बतलायी हैं : -

(अ) इसका रूप आपेरा जैसा है ।

(ब) गीत (लोकगीतों) की प्रधानता है ।

(स) लय के अनुसार ही नृत्य के कदमों की ताल बंधी हैं ।

(द) खुले मच (ओपन एयर) में इसे सम्पन्न किया जाता है ।

इसकी कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं : यथा : -

(अ) सरल भाषा

(आ)सीधी बोधगम्य लोकप्रिय धुनों का प्रयोग

(इ) अभिनय की कुछ सूक्ष्म भावाभिव्यक्तियाँ

(ई) सामाजिक व्यंग्य पर आधारित कथावस्तु का चुनाव ।

इन दिनों ख्याल शैली के प्रमुख प्रवर्तक उगमराज खिलाड़ी हैं ।

चिड़ावा या शेखावाटी ख्याल - नानूराम इस शैली के मुख्य 'खिलाड़ी ' रहे हैं । उनका स्वर्गवास 60 साल पहले हुआ, फिर भी वे अपने पीछे स्वरचित ख्यालों की एक धरोहर छोड़ गए हैं । उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं -

(1) हीर-राँझा (2) हरीचन्द, (3) भर्तृहरि, (4) जयदेव कलाली, (5) ढोला मरवण और (6) आल्हादेव ।

नानूराम चिड़ावा के निवासी थे, और मुसलमान थे । उनके योग्यतम शिष्यों में दूलिया राणा का नाम लिया जाता है ।

इस लोक नाट्य शैली की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं : -

(1) अच्छा पद संचालन

(2) पूर्ण सम्प्रेषित हो सके उस शैली, भाषा और मुद्रा में गीत गायन,

(3) वाद्यवृन्द की उचित संगत, जिनमें प्राय: हारमोनियम, सारंगी, शहनाई, बांसुरी, नक्कारा तथा ढोलक का प्रयोग होता है ।

जयपुरी ख्याल-यद्यपि सभी ख्यालों की प्रकृति मिलती-जुलती है, परन्तु जयपुरी ख्याल की कुछ अपनी विशेषता हैं जो इस प्रकार हैं ।

(1) स्त्री पात्रों की भूमिका स्त्रियाँ भी निभाती हैं ।

(2) जयपुर ख्याल में नये प्रयोगों की महती संभावनाएँ हैं ।

(3) यह शैली रुढ़ नहीं है, मुक्त तथा लचीली है ।

(4) इसमें अखबारों, कविता, संगीत, नृत्य तथा गान व अभिनय का सुन्दर समानुपातिक समावेश है ।

गुणिजन खाना के कलाकार जयपुरी ख्यालों में हिस्सा लिया करते हैं । इस शैली के कुछ लोकप्रिय ख्याल निम्नांकित है ।

(1) जोगी-जोगन, (2) कान-गूजरी, (3) मियां-बाबू (4) पठान, (5) रसीली तम्बोलन ।

तुर्रा कलंगी ख्याल - मेवाड़ के शाह अली और तुकनगीर नाम के दो संत पीरों ने 400 वर्ष पहले इसकी रचना की और इसे यह नाम दिया । 'तुर्रा' को महादेव 'शिव' और 'कलंगी' को 'पार्वती' का प्रतीक माना जाता है । तुकनगीर तुर्रा' के पक्षकार थे तथा शाह अली 'कलंगी' के । इन दोनों खिलाड़ियों ने 'तुर्रा कलंगी' के माध्यम से 'शिवशक्ति' के विचारों को लोक जीवन तक पहुँचाया । इनके प्रचार का मुख्य माध्यम काव्यमय संरचनाएँ थीं, जिन्हें लोक समाज में 'दंगल' के नाम से जाना जाता है । ये 'दंगल' जब भी आयोजित होते हैं तो 'दोनों पक्षों' के खिलाड़ियों को बुलाया जाता है ओर फिर इनमें पहर-दर-पहर काव्यात्मक संवाद होते हैं ।

तुर्रा कलंगी का ख्याल बहुत लोकप्रिय हुआ है और यह सम्पूर्ण राजस्थान मे खेला जाता है । इसका विस्तार मध्य प्रदेश तक भी है । 'तुर्रा कलंगी' सम्बंधी सबसे पहले खेले गए ख्याल का नाम 'तुर्रा कलंगी का ख्याल' था । हमी दुल्हा के शब्दों में 'तुर्रा कलंगी' के शेष चरित्र प्राय: वही होते हैं जो अन्य ख्यालों के होते हैं । फिर भी निम्नांकित विशिष्ट बातें इसकी उल्लेखनीय हैं ।

(अ) इसकी प्रकृति गैर व्यावसायिक किस्म की हैं ।

(ब) इसमें रंगमंच की भरपूर सजावट की जाती हैं ।

(स) नृत्य की कदम ताल सरल होती हैं ।

(द) लयात्मक गायन जो, कविता के बोल जैसा ही होता है ।

(इ) यही एक ऐसा लोकनाट्य है जिसमें दर्शक के भाग लेने की सर्वाधिक संभावनाएँ मौजूद होती हैं ।' '

तुर्रा कलंगी' के मुख्य केन्द्र हैं, घोसूण्डा, चित्तौड़, निम्बाहेड़ा तथा नीमच (मध्य प्रदेश) । इन स्थानों मे तुर्रा कलंगी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार दिए हैं जैसे चेतराम सोनी, जयदयाल, घोसूण्डा का हमीद बेग, जब पयाल ताराचन्द तथा ठाकुर ओंकारसिंह आदि ।

26.07 रम्मत

लोक नाट्य की श्रृंखला मे रम्मतों का विशेष महत्व एवं योगदान है । विशेषकर यह परम्परा राजस्थान के मरू प्रदेश में अधिक देखने को मिलती हैं । जैसलमेर एवं बीकानेर की 'रम्मतों' का यहां विशेष उल्लेख किया जा रहा है । श्री अगरचन्द नाहटा ने 'रम्मत' शब्द को स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि इसकी उत्पत्ति 'रमे' या 'रमण' से हुयी है । अर्थात् इसका अर्थ है 'रमना ' या 'खेलना ' । 'रम्मत ' सारी रात चलने वाला नाट्य है और इसका आयोजन विशेषत : होली-फाग के समशीतोष्ण रात्रियों में किया जाता है । इनको करने वालों के अपने अखाड़े या मण्डलियां होती हैं ।

इन लोक नाट्यों की प्रस्तुति किसी बस्ती, चौराहे चौक, या मोहल्ले के मध्य के रिक्त स्थान पर मंच बनाकर की जाती है । यह मंच चारों ओर से खुला होता है परन्तु कभी-कभी यह एक दिशा में पक्की या कच्ची दीवार से बँधा हुआ भी होता है । कुछ उदाहरण मंच के ऊपर मंडप के भी होते हैं । पहले दुमंजिला या अट्टाली मंच भी बनाये जाते थे ।

रम्मत के रचयिता एवं इसे लोकप्रियता प्रदान करने में तेज कवि का बहुत योगदान है । तेज कवि ने अखाड़ा स्थापित करके अनेक रम्मतों की रचनाएँ लिखी हैं जैसलमेर के साथ-साथ बीकानेर व अन्य क्षेत्रों में इसका प्रसार करवाया । तेज कवि की सबसे प्रसिद्ध रचना राजा भरथरी की रम्मत हैं । जिसमें श्रृंगार, नीति, वैराग्य एवं योग सभी पक्षों का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है । वैसे पौराणिक आख्यानों एवं राजस्थान के वीर पुरुषों पर उन्होंने अनेक रचनाएँ लिखी है ।

जैसलमेर में भी सबसे लोकप्रिय रम्मत यही थी । यह रम्मत चार चरणों मे पूरी रात्रि चला करती थी । प्रथम चरण में गणेश जी, सरस्वती, दुर्गा एवं गुरु की आराधना की जाती थी । फिर मेहतर, भिश्ती, फराश ओर हरकारा का प्रवेश एवं उनके चरित्र व कार्य का विवरण प्रस्तुत किया जाता है । तत्पश्चात् राज दरबार लगता है ओर उधर गुरु मंछदरनाथ उज्जैन के राजा को जो पूर्व जन्म में भरथरी था, को बुलाने के आदेश देकर रंगमंच के रोमांच को विधिवत प्रारम्भ कर देते हैं । द्वितीय चरण में भरथरी (भर्तृहरि) की पत्नी पिंगला एवं उसकी अपने देवर विक्रम के प्रति आसक्ति का विवरण है जो विभिन्न राग रागिनियों एवं नृत्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । तृतीय चरण में एक ब्राह्मण द्वारा अमर फल राजा को भेंट करना तथा उसी फल को क्रमश: राजा द्वारा रानी को, रानी द्वारा कोचवान को, कोचवान द्वारा वेश्या को एवं वेश्या द्वारा पुन : राजा को दिये जाने का प्रसंग है । राजा फल को देखकर सांसारिक भावों से विमुक्त होकर वैराग्य की ओर जाना चाहता है । चतुर्थ चरण में राजा द्वारा जोगी बनकर अपनी ही रानी से भीख मांगने का मार्मिक प्रसंग है । इस कथा से दर्शक अभिभूत हो जाते हैं । व 'रम्मत ' के माध्यम से जीवन के प्रत्येक भाव से समीप का परिचय पाते हैं । प्रात:

रम्मत मंगल कामना के साथ समाप्त हो जाती है । जैसलमेर के सिलावट समाज के लोग 'मस्तान परी ' की रम्मत करते हैं ।

बीकानेर की रम्मतों के इतिहास का उल्लेख लगभग 100 वर्ष पुराना है । इन रम्मतों को बन्द रम्मतें एवं चालू रम्मतों के शीर्षक के अन्तर्गत अधिक समझ सकते हैं । बन्द रम्मतों से तात्पर्य यह है कि वे अब बन्द हो चुकी हैं । वस्तुत: बीकानेर नगर के लगभग प्रति मोहल्ले में ये रम्मतें खेली जाती थी । चालू रम्मतों का अर्थ उनसे है जो आज भी किसी न किसी रूप में मंचित हैं । रम्मतों का साधारणतया समय फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की तिथि अष्टमी से लेकर पूर्णिमा के मध्य रहता है । वैसे बीकानेर में सबसे लोकप्रिय रम्मत अमरसिंह राठौड़ की है लेकिन रम्मतों का प्रारम्भ 'फकरदाता की रम्मत ' से होता है । बीकानेर में कथात्मक रम्मतों का प्रचलन अधिक है । जिसमें हैडाऊ-मैरी री रम्मत. अमरसिंहरी रम्मत, नौटंकी री रम्मत मुख्य है । अमरसिंह री रम्मत का कथानक ऐतिहासिक है और रम्मत का नायक नागौर का शासक अमरसिंह राठौड़ था जिसका शाहजहाँ बादशाह के मीर बख्शी सलाबत जंग के झगड़ा हो गया था जिसके फलस्वरूप दरबार में ही मारकाट मच गयी थी । यह शौर्य, वीरता एवं अभिमान को प्रदर्शित करने वाला लोकनाट्य है और अमरसिंह जननायक है । हैडाऊ-मैरी री रम्मत प्रेम परक कथा से जुड़ी हुई है । कुम्मलनेर के ठाकुर हेडाऊ का अपनी अन्य पत्नियों की तुलना में मैरी से अत्यधिक लगाव एवं उससे जुड़ी मानवीय भावनाओं का प्रसंग है । नौटंकी री रम्मत भी एक प्रेम गाथा है जिसमें एक युवक अपनी भाभी के ताने पर नौटंकी नाम की स्त्री से विवाह की योजना बनाता है एवं अन्तत: सफल हो जाता है इस प्रकार बीकानेर की रम्मतें रोमांच एवं रोमांस से जुड़ी हुई है । इन रम्मतों में भी अन्य स्थानों की भांति पुरुष ही स्त्रियों की भूमिका निभाते हैं एवं ये लोकनाट्य स्थानीय समाज की संस्कृति एवं धर्मनिरपेक्षता के प्रतीक हैं । मानवीय गुणों एवं भावनाओं का प्रदर्शन करके जन आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते हें । 'लावणी ' भी रम्मत का अभिन्न अंग है । जैसे कृष्ण सुदामा की लावणी, श्रवणकुमार की लावणी, पंचावण की लावणी, आदि आदि । लावणियों में श्रृंगार, भक्ति, हास्य, करुण, वीरता आदि में से कुछ भी हो सकता है । इसमें संवाद विवरण की प्रधानता लिये हुए बोले जाते हैं ।

26.08 गवरी

लोक नाट्य नृत्य नाटिका बनकर भी प्रस्तुत होते रहे हैं । उसमें भील समुदाय की नृत्य नाटिका 'गवरी ' मूलत: एक लघु नाटिका है जिसमें नृत्य, सुरताल, लयबद्ध प्रदर्शन विशेषता है । इसका नाटिका का प्रयोजन धार्मिक उपासना को प्रदर्शित करने के लिये होता है । वस्तुत : यह प्रदर्शन शिव-पार्वती की आराधना के निमित्त होता है और यह लोकोत्सव है जो 40 दिन तक चलता है गवरी के एम्स दल में सामान्यत : 30- 35 व्यक्ति होते हैं और 100 - 150 व्यक्तियों के समूह का भी उल्लेख आता है । इसमें देव, मानव, दानव एवं पशु पात्र होते हैं तथा राई, बुरिया, बुड़िया, भोपा और पुजारी प्रमुख पात्र होते हैं । यहाँ बुरिया (बुड़िया) और राई शंकर एवं पार्वती है ।

भाद्रपद मे गवरी प्रारम्भ होने के तीन दिन पूर्व पात्र मांस-मदिरा, हरी सब्जी व भोग विलास को त्याग देते हैं । भोपा रख पुजारी से स्वीकृति मिलने के पश्चात् इसका दिन व स्थान तय किया जाता है । भील भोपा द्वारा मंत्रोच्चारण के साथ एवं 'देवता ' को स्थापित किया जाता है । फिर पूजा प्रारम्भ होती है एवं भोपा मे देवता की आत्मा का आगमन होता है । इसके साथ ही उसके दो सहयोगियों

में अम्बा माता एवं धर्मदेव के भाव आ जाते हैं । फिर भोपा, उसके सहयोगी एवं नर्तक देवताओं के आशीर्वाद के लिये नृत्य करने लगते हैं । इस मध्य भोपा स्वयं को लोहे की जंजीर से जोर-जोर से मारता है और जो कुछ भी उसके मुख से निकलता है, उसे देववाणी समझा जाता है । लगभग एक घंटे चलने वाली यह गतिविधि सूर्यास्त के कुछ समय पूर्व जय शंकर एवं पार्वती मां की गूंज के साथ समाप्त हो जाती है । उसके बाद नृत्य नाटिकाओं का क्रम आने वाले दिनों में इस व्यवस्था में चलता रहता है ।

बुड़िया : - गवरी के इस भाग में चार अभिनेता होते हैं : - बुड़िया, राई, भोपा व पुजारी । बुड़िया भगवान शिव का रूप होता है । बुड़िया नर्तक अन्य नर्तकों की विपरीत दिशा में नृत्य करता है और चूंकि यह नृत्य पूरे दिन चलता है इस कारण एक से अधिक नृतक एक-एक करके बुड़िया की भूमिका सम्पन्न करते हैं ।

राई - भीलों की धारणा है कि शिव की पत्नी पार्वती उनके समुदाय की थी एवं इसी कारण गौरी (पार्वती) के नाम पर यह नाटिका गवरी के नाम से जानी जाती है । यहाँ राई या पार्वती की भूमिका भी पुरुष सम्पन्न करते हैं। और वे मेवाड़ी स्त्रियों की पोशाक धारण करते हैं ।

भोपा : - 'गवरी ' का एक महत्वपूर्ण पात्र होता है और इसमें देवताओं की आत्मा प्रवेश करती है भोपा देवताओं की बातें जन-जन को पहुँचाता है और रोमांचकारी नृत्य के भाव प्रदर्शित करता है । वह एक सफेद चोला पहिनता है तथा सिर पर पगड़ी व नकली चोटियां रखता है । हाथ में मोर के पंखों से बनी सोटी रखता है ।

पुजारी : - गवरी के खेल को प्रारम्भ करने का सूत्रपात पुजारी से ही होता है । पुजारी किसी गांव में जाकर 'गवरी' का निमन्त्रण नीम की पत्तियों (8 पत्ती) को लेकर जाता है । पत्नी की स्वीकृति मिलते ही गवरी का दिन तय कर लिया जाता है । वस्तुत : पुजारी भोपा के सहयोगी होते हैं व नाटिका को संचालित करने में सहायता देते हैं ।

गवरी का उत्सव का समापन आश्विन माह की प्रथम नवमी को होता है । इस दिन कुम्हार के यहाँ से मिट्टी का हाथी लाकर रखते हैं व रात्रि भर नृत्य चलता रहता है । फिर हाथी की मूर्ति जो काली मिट्टी से बनी होती है, का विसर्जन किया जाता है । इन प्रथाओं को घड़ावण एवं वलावण कहा जाता है । वलावण में विर्सजन के बाद भोपा व सभी स्नान करते हैं एवं आटे-गुड़ का बना भैंसा मारा जाता है । रात्रि में मेहन्दी रचाने का कार्यक्रम चलता है जिसे मृगा कहते हैं । वलावण की अन्तिम क्रिया के रूप में शिव -पार्वती की मिट्टी की प्रतिमाओं को जल में विसर्जित किया जाता है ।

गवरी का प्रधान अभिनेता सामान्यत: वंशानुगत व्यक्ति होता है । यह भी मान्यता है कि किसी कन्या के विवाह के पश्चात् उसके गाव में गवरी का नृत्य होना चाहिये । अब हम गवरी के विभिन्न अभिनयों अथवा उसमें दिखायी जाने वाली कहानियों के प्रदर्शन का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत करते हैं

भंवरिया - भंवर- भंवरिया गवरी इकाई का प्रथम अभिनय प्रदर्शन है । इसमें भील-भीलनियां भंवरी भंवरिया बनते हैं । भंवरिया भंवरी का देवर है और दोनों देवी के आशीर्वाद से शहद का सेवन प्राप्त करते हैं । दूसरे क्रम में अभिनय गोम मीणा का है । जिसमें गोम या बाली नाम का डाकुओं का सरदार चौथ माता के आशीर्वाद को लेकर डाका डाला करता है । अन्तत: वह देवी के आभूषणों पर ही लालच कर लेता है एवं नष्ट हो जाता है । अगले क्रम में भीनियावल एवं अम्बा माता की प्रस्तुति है जिसमें भीनियावल राक्षस अम्बा को विवाह का प्रस्ताव भेजता है और राक्षस नष्ट हो जाता है अन्य

कहानी 'कालू करि तथा अम्बा ' में भील स्त्री अम्बा की अंगूठी पानी में रोहू मछली निगल जाती है जिसे उसका पति कालू करि देवी कृपा से पुन: मछली फसाकर प्राप्त कर लेता है । गवरी के प्रदर्शन में आधुनिक इतिहास के काल की घटनाएँ भी सम्मिलित हैं । इसमें भीलों द्वारा ब्रिटिश सेना का विरोध किये जाने का प्रदर्शन 'बादशाह की फौज ' है । एक अन्य कथा प्रदर्शन में 'बणजारा एवं डाकू' एवं 'बणजारा रख दाणी मां ' है । इन कथाओं मे सरकारी कर्मचारी एवं डाकू द्वारा बणजारों को लूटने के वृतान्त हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि जन जातियों ने अपनी परम्पराओं, विश्वासों एवं मान्यताओं के साथ-साथ अपने ऊपर व्यवस्थाओं के होते प्रहारों के विरुद्ध सीधी साधी प्रतिक्रियाओं को इस गवरी इकाई नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है । साथ ही ये प्रस्तुतियाँ जन साधारण के लिये म्नोरंजन का कारण भी बनती हैं ।

26.09 फड़

फड़ भोपों द्वारा खेली जाती है । ये भोपे जल्दी-जल्दी एक स्थान से दूसरे स्थान तक चले जाते हैं । चित्रित फड़ को प्रदर्शकों के सामने खड़ा तान दिया जाता है । भोपा गायक की पत्नी या सहयोगिनी, लालटेन लेकर फड़ के पास नाचती और गाती हुई पहुँचती हैं और वह जिसअंश का गायन करती हैं, डंडी से उसे बताती जाती हैं । भोपा अपने प्रिय वाद्य 'रावण हत्था ' को बजाता हुआ स्वय भी नाचता गाता रहता है । यह नृत्य गान समूह के रूप में होता है । दर्शकगण फड़ के दृश्यों से एवं सहवर्ती अभिनय के बहुत प्रभावित होते हैं और अपने परिवार के लिए इसे देखना, वर्ष की शुभ घटना मानते हैं ।

फड़ से सम्बन्धित दो लोकप्रिय चित्र गीत कथाएँ, पाबूजी ओर देवजी की पड़े ही हैं । पाबूजी राठौड़ जाति के महान लोक नायक हुए हैं । इनका समय पूर्व मध्य काल का है । उनकी गाथा के आज भी राजस्थान में हजारों लाखों प्रशासक हैं । उनके अनुयायी भी हजारों की संख्या में हैं । पाबूजी को कुटुम्ब के देवता के रूप में पूजा जाता है और उनकी वीरता के गीत चारण और भाटों द्वारा गाये जाते हैं । मारवाड़ के भोपों ने पाबूजी की वीरता के सम्बन्ध में सैकड़ों लोकगीत रच डाले हैं और पाबूजी की शौर्यगाथा आज भी लोक समाज में गायी जाती है । एक खास कविता, जो पाबूजी के भोपों के नाम से जाना जाता है, उन्होंने पाबूजी की फड़ के गीत को अभिनय के साथ गाने की एक विशेष शैली विकसित करली है ।

पाबूजी की फड़ लगभग 30 फीट लम्बी तथा 5 फीट चौड़ी होती है । इसमें पाबूजी के जीवन चरित्र को लोक शैली के चित्रों में अनुपम रंगों एवं रंग एवं फलक संयोजन के जरिए प्रस्तुत किया जाता है । इस फड़ को एक बाँस में लपेट कर रखा जाता है और यह भोपा जाति के लोगों के साथ धरोहर के रूप में तथा जीविका साधन के रूप में भी चलता रहता है । पाबूजी की दैवी शक्ति में विश्वास करने वाले लोग प्राय : इन्हें नियंत्रण देकर बुलाते हैं क्योंकि वे जानते है कि इससे उनके बाल बच्चों की बीमारियाँ तथा परिवार की भूतप्रेत जैसी बाधाएँ दूर हो जावेगी ।

पाबूजी के अलावा दूसरी लोकप्रिय फड़ 'देवजी की फड़ ' है । देवजी भी सोलंकी राजपूतों के पाबूजी की ही तरह के वीर नायक थे । देवजी की फड़ के गीत, देवजी के भोपों द्वारा गाए जाते हैं, ये भोपे पूजा जाति के हैं, 'जन्तर ' नामक प्रसिद्ध लोकवाद्य पर ' भोपा ' इस फड़ की पुन बजाते हैं । राजस्थान में भोपों के कई प्रकार हैं । वे प्राय: 'रावण हत्था ' अपंग तथा जन्तर नामक वाद्यों का

प्रयोग करते हैं । ये भूमिहीन होते हैं और अपनी जीविका के लिए उन्हें फड़ों के दरसाव पर ही निर्भर रहना पड़ता है । प्रतिवर्ष विजयादशमी (दशहरा) के मौके पर रोणीचा के पास कोडमदे गांव के एक बड़ा मेला लगता है, यही पाबूजी का मूल स्थान है । यहाँ आकर भक्तगण हजारों की संख्या में उन्हें अपनी श्रद्धान्जलि अर्पित करते हैं । इस मौके पर हजारों फड़ गायक भी एकत्र हो जाते हैं और सब मिलकर सामूहिक रूप से पाबूजी का गीत गाते हैं ।

26.10 भवाई

गुजरात की सीमा से सटे हुए राजस्थान के क्षेत्रों में ' भवाई ' नामक नृत्य नाटिका बहुत लोकप्रिय है । अपने स्वभाव से ही यह नृत्य नाटक व्यावसायिक किस्म का है और इनके अनेक महत्वपूर्ण तकनीकी पक्ष है । ' भवाई ' करने वाले अपने यजमानों ' या संरक्षकों के पास प्रतिवर्ष जाते हैं और उनका वहा हार्दिक स्वागत होता है ।

इसी शैली पर आधारित तथा एक नाटक 'जस्मा ओडन' है जिसे भारत के बाहर लंदन और जर्मनी में खेला गया । यह नाटक शान्ता गांधी द्वारा लिखा गया इसके उल्लेखनीय पक्ष निम्नांकित हैं

(1) सगाजी एवं 'सगीजी ' में रूप में भोपा-भोपी, कुछ अन्य विनोदी, विदूषक चरित्रों के साथ इन नाट्य को सम्पन्न करते हैं । इनका संचालन सूत्रधार करता है ।

(2) इसकी कथा आम आदमी के संघर्ष से सम्बन्धित है । यह उच्च और निम्म वर्ग के वर्ग-संघर्ष को बताता है ।

उपरोक्त लोकनाट्य रूपों के अलावा, राजस्थान में कतिपय रंगमंचीय लोक नाट्य तत्वों का भोपाओं तथा तत्सम्बन्धी जनजातियों के कुछ व्यक्ति विशेषों में प्रदर्शन, कुटुम्ब परम्परा के रूप में भी देखने को मिलता है । इनमें कुछेक, रासधारी हैं, कुछ बहुरूपिये तथा भाण्ड है ।

26.11 इकाई सारांश

इस प्रकार हमने देखा कि राजस्थान में रंगमंच एवं लोकनाट्य की परम्पराएँ प्राचीन एवं विस्तृत हैं ये शहरों, कस्बों, गांवों व यहाँ तक कि आदिवासी क्षेत्रों में व्यवस्थित रूप से खेले जाते हैं । इन लोक नाट्यों के विषय ऐतिहासिक एवं पौराणिक होने के साथ-साथ सम-सामयिक भी है ये विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों में बोले जाते हैं एवं स्थान तथा समुदाय विशेष की विभिन्नताएँ भी इनमें हैं यहाँ तक कि इनकी शैलियाँ भी अलग-अलग है भीलों का गवरी लोक नाट्य तो एक कथा सागर है । ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में 1 9वीं शताब्दी के पुनर्जागरण के आन्दोलन ने अपनी सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव राजस्थान पर भी छोड़ा है । एवं फलस्वरूप ख्याल, रम्यत व नौटंकियों के अनेक विषयों पर शैलियों का जन्म हुआ है । लोक नाट्य कलाकार शुद्ध रूप से अपनी मिट्टी से जुड़े हुए हैं व उन्हें क्षेत्रीय तथा साम्प्रदायिक भावनाएँ किसी प्रकार नहीं बांटती हैं बस वे अपना सन्देश देना चाहते हैं । राजस्थान का वीर गाथा काल एक लम्बे युग तक चलता रहा है । रम्मत एवं फड़ में उसे न्यायोचित ढंग से प्रस्तुत किया गया है । राजस्थान के लोक नाट्य अपनी परम्पराओं की धरोहर एवं सम्पति दोनों हैं ।

26.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये :

(1) सामन्ती युग में लोक नाट्यों को संरक्षण किन कारणों से प्राप्त हुआ ।

(2) रासलीला एवं रासधारी में क्या मूल अन्तर है ।

(3) भवाई नाट्य पर प्रकाश डालिये ।

(4) कुचामणी ख्याल की शैली की विशेषता बतलाइये?

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये ।

(1) राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में खेली जाने वाली 'रामलीला' पर प्रकाश डालिये ।

(2) 'गवरी' विभिन्न कथा विषयों के नाट्यों का संग्रह है, विवेचना कीजिये ।

(3) बीकानेर रम्मत के विषय एवं विशेषताएँ बतलाइये ।

(4) तुर्रा कलंजी ख्याल अन्य ख्यालों से किस प्रकार भिन्न है एवं इसका कथा विषय क्या है बतलाइये ।

इकाई सं. 27 " कठपुतलियाँ तथा विभिन्न प्रकार की जीवन्त प्रस्तुतियाँ "

इकाई संरचना

27.01 उद्देश्य

27.02 प्रस्तावना

27.03 पुतली काठ की बड़े ठाठ की

27.04 कठपुतली की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि कठपुतली की शैलियाँ

27.05 कठपुतली की शैलियाँ

27.06 नटों की प्रतिभा

27.07 भाँड एवं भांडाई

27.08 इकाई सारांश

27.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

27.01 उद्देश्य

विद्यार्थियों इस इकाई के अध्ययन का तात्पर्य आपका उन गतिविधियों से परिचय प्राप्त कराना है जो सांस्कृतिक मनोरंजन के क्षेत्र में अपना पारम्परिक विशिष्ट स्थान रखती है । इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको मुख्य रूप से निम्न जानकारियाँ प्राप्त हो सकेगी ।

(1) सांस्कृतिक मनोरंजन के क्षेत्र में कठपुतली के खेल की क्या रचना है एवं परम्परा है ।

(2) इस प्रसिद्ध खेल का किस प्रकार समाज से सांस्कृतिक जुड़ाव है ।

(3) राजस्थानी समाज मे जीवन्त प्रस्तुतियाँ करने वालों का किस प्रकार का जीवन है ।

(4) जीवन्त प्रस्तुतियाँ के विषय क्या है तथा उनकी शैलियाँ किस प्रकार की हैं ।

27.02 प्रस्तावना

इस इकाई में अध्ययन करते हेतु मुख्य रूप से हमने कठपुतली का खेल दिखलाने वाले, भांडों व नटों का चयन किया है । राजस्थान में भाटों, नटों एवं भांडों ने न केवल क्षेत्रीय इतिहास को जीवन्त बनाया है बल्कि अपने 'हुनर' की परम्पराओं से सांस्कृतिक जीवन को सरस, उद्देश्यपूर्ण एवं मनोरंजक बनाया है । इनकी कलाओं को राजा एवं प्रजा दोनों ने सराहा है । हमने प्रथम पाठ्यक्रम की 33वीं इकाई में पुतलियों एवं रंगमंच की अन्य लोकधर्मी परम्पराओं के बारे में पर्याप्त जानकारी दी है । अत : उनको यहाँ दोहराना ठीक नहीं होगा । पुतलियों का परिचय पृष्ठ 74-75 पर स्पष्ट है । विशेषकर कठपुतली, दस्ताने वाली पुतली एवं सिंचाई-संचालित पुतली तीनों का क्रमवार परिचय दिया गया हे । इसी प्रकार 'स्वांग के प्रदर्शन का विवरण भी दिया गया है । प्रस्तुत इकाई में कठपुतलियाँ तथा विभिन्न प्रकार की जीवन्त प्रस्तुतियों को राजस्थान प्रदेश के विशेष संदर्भ में और वह भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लिखा गया है । इकाई की लेखन शैली भी अलग है इसे राजस्थानी कथाओं के रूप में प्रस्तुत किया

गया है परन्तु जानकारी पुष्ट है । आशा है विद्यार्थियों को यह 'स्वांग ' लुभायेगा एवं साथ ही उन्हें राजस्थानी परिवेश में जीवन्त प्रदर्शनों का सही परिचय भी मिलेगा ।

27.03 पुतली काठ की बड़े ठाठ की

राजस्थान धागा पुतलियों का गढ़ है । एक ऐसा गढ़ जिसने अपनी बेजान पुतलियों में जादुई जान डालकर पूरे विश्व में तहलका मचा दिया । काठ की ये पुतलियां कलाकार की अंगुली पर ऐसी चलती हैं जैसे एल चलता है! यह काठ पुतली एक ऐसी पुतली है जो अपने गोल चपटे चेहरे, लम्बी -मोटी आँखें, उभरे ऊंचे कान, फूले हुए न्थूने, लटके खुले होठ तथा चपटी चौड़ी कनपटी लिये सहज ही सबका मन कैद कर लेती है । यह पुतली रग बिरंगी वेशभूषा में रूढ़िगत रूपसज्जा एवं आकर्षक आकार प्रकार के साथ लचक लिये होती है । इनमें राजा पुतली लम्बे झग्गे पहने होती हैं जो सुनहरी रूपहरी पतली चौड़ी कोर से सजे होते हैं । झग्गे के नीचे साधारण कपड़े का पोतिया होता है । इसके एक हाथ में तलवार तथा दूसरे में ढाल रहती है । यह पुतली सवा-डेढ़ फीट की लम्बाई लिये होती है । अन्य पुतलियाँ अपेक्षाकृत छोटी होती है । कठपुतली नचानेवाला नट यानि भाट अपने मुंह से एक विशेष प्रकार की सीटी रखता है जिससे कठपुतलियों की चिड़ियों सी बोली निहत होती है ।

परम्परागत जो कठपुतली खेल में देखने को मिलती हैं वह दरबारी खेल ही अपनी शान शौकत लिए होता है । राजा- महाराजा हाथी घोड़े ऊंट पर सवार होकर आते हैं । उनका अच्छा खासा दरबार जुड़ता है और उस दरबार में कई प्रकार के खेल तमाशे दिखाने वाले आते हैं जो अपने जादुई करतबों द्वारा उच्च स्तरीय मनोरंजन करते हैं । इनमें डुगडुगीवालों का 'और बजेगी ' थोड़ी सी और बजेगी' ' कहकर बार-बार डुगडुगी बजाना, चोबदार का 'जो आज्ञा' कहकर अपना शीश झुकाना, पहरेदार का 'नजर महरबान, कहकर राजा-महाराजाओं का स्वागत सत्कार करना, पट्टेबाज का लाहौर का तेगा और विलायत की तलवार चलाना, एक ही पुतली के जनाने-मर्दाने भेष में आगरे के देवर तथा दिल्ली की भौजाई का रूप भरना, वेश्या का 'दुपट्टा मेरा बैंगनी रंगवादों ' तथा नर्तकी का 'सैंया तेरी गोदी में गेंदा बन जाऊंगी ' गीत पर ठुमकना मालिन का गेंदा हजारी का फूल बेचना, ऊँट का ढोला से मिरगा नैणी के देश पधारने का न्यौता देना, घोड़े की पूछ हिलाते हिनहिनाते झुलाना, मगर का मुँह फाड़ना, बहु रूपियों द्वारा बहरूप दिखाना पूरी महफिल का मनोविनोद करना ओर ऊँचा इनाम पाना होता है ।

27.04 कठपुतली की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा करते समय कठपुतली कलाकारों ने बताया कि उज्जैन के राजा विक्रम का बत्तीस पुतलियों वाला न्याय बड़ा प्रसिद्ध था । सही न्याय पाने के लिये पृथ्वीलोक से ही नहीं, अन्य लोक से प्राणी भी आते थे। पुतलियां राजा के इशारे पर दीं दिशाओं में घूमफिर कर सच्ची घटना की खबर राजा को देती । उसी आधार पर राजा न्याय करता । यही न्याय करने का, बत्तीस पुतलियों का खेल कठपुतली का बड़ा मनोहारी खेल बना । गांव-गांव सिंहासन बत्तीसी का खेल देखने लोग उमड़ पड़े । इस खेल द्वारा कठपुतली नचाने वाले सैकड़ों परिवार बने और सबने विक्रमादित्य का प्यारा खेल पुतलियों के माध्यम से प्रचारित किया ।

इसके बाद कहते हैं पृथ्वीराज-संयोगिता की घटना पुतली खेल का मुख्य आधार बनी और फिर नागोर के राजा अमरसिंह राठौड़ की मुगल बादशाह शाहजहां के साथ घटी दिलचस्प घटना पुतलियों

का प्रिय विषय बनी । इस खेल में आगरे के किले में शाहजहाँ का दरबार दिखाया जाता है । अमरसिंह बादशाह की नौकरी में हैं । अपने विवाह के लिए वह सात दिन का अवकाश लेकर जाता है किन्तु यथासमय नहीं लौट पाता है । इस पर दरबार में उसकी चुगली चलती है । बादशाह का साला सलावतखां सिखाने में आकर अमरसिंह पर खफा हो उठता है ओर दंड की घोषणा करता है । इस पर वीरवर अमरसिंह का राजपूती खून खौल उठता है । दंड की रकम जमा कराने के बहाने वह भरे दरबार में उपस्थित होता है और कुछ कहने की ललकार देता है कि सलावत खां उसे रोक देता है । दोनों के सवाल-जबाव में पुतलियां बोलती हैं ।

सलावत खां - सात दिन का कौल किया छ महीना गुजार दिया । हाड़ी रानी ब्याह के हिन्दू गुजरे तक नहीं आया । सात दिन के सात लाख रुपये जुर्माना रखो ।

अमरसिंह - सात लाख नहीं, तीन लाख ले लो ।

सलावत खां - नहीं, चवदा लाख लूंगा ।

अमरसिंह - चवदा लाख तो क्या एक पाई नहीं दूंगा ।

सलावत खां - हट बे हिन्दू गंवार ।

अमरसिंह - आज कहा गंवार । कल कुछ और देगा गाली । यह ले चोट अमरसिंह की भरी है कि खाली ।

यह कहते ही अमरसिंह अपनी तलवार के बार से सलावत खां का सिर उड़ा देता है और बादशाह पर हमला करता । बादशाह तुरंत फुरती से भाग खड़ा होता है । अंत में अमरसिंह का साल। अरजुन गौड़ अपने बहनोई को फुसलाकर वहां से ले जाता है और धोखे से उसे मार गिराता है । इतने में अमरसिंह का भतीजा रामसिंह वहा आ निकलता है इकाई जो अरजुन गौड़ का सिर कलम कर अपने चाचा की हत्या का बदला चुकाता है ।

कठपुतली का जहां भी खेल करना होता है, एक खाट खड़ी कर दी जाती है । उसके सहारे एक तिबारी लगादी जाती है और आगे की ओर एक परदा तान दिया जाता है ताकि खाट के पीछे खड़े पुतली कलाकार दिखाई नहीं दे सैक । पुतली नचाने वालों के साथ एक महिला ढोलक बजाने वाली होती है जो ढोलक पर थाप देती हुई पुतलियों के सीटी प्रकार की वाले सवाल-जवाब को उलथाती है । इससे पूरे खेल में जान बनी रहती है । रंग बरसता रहता है और देखने वालों की उत्सुकता भरी नजर मंच पर थिरकती पुतलियों' को अपनी में रूपायित करती रहती है ।

राजस्थान को कठपुतलियों की जन्मस्थली होने का गर्व है । इस सम्बंध में यहाँ कई तरह के किस्से- कहानी सुनने को मिलती है । एक कथा के अनुसार सेवकराम नामक एक बढ़ई था जो काठ के खिलौने बनाने में सिद्धहस्त था । जो भी देखता उसके खिलौनों की प्रशंसा में फूला नहीं समाता । बच्चों को तो उसके खिलौने इतने प्रिय थे कि वे उनसे बातें करते । सेवकराम बच्चों को जब खिलौनों से बतियाते देखता तो वह यही धुन लिये रहता कि यदि ये खिलौने बोलने लग जायें तो कितना अच्छा हो । वह रात-दिन इसी सोच में खोये रहता कि क्या कुछ करने से ये बोलने लग जायें वह घंटों उन खिलौनों की ओर टुकुर-टुकुर देखा करता और उन्हीं में खो जाता ।

एक दिन शिव-पार्वती घूमते घामते उधर निकले । पार्वती की नजर सेवकराम के खिलौनों पर पड़ी तो वह उन्हें देख स्तब्ध रह गई । उसने शिवजी से कहा- भगवन् । क्या ही अच्छा हो इन खूबसूरत

खिलौनों में प्राण प्रतिष्ठा हो जाये तो ये चहचहाने लग जायें । शिवजी ने पार्वती की बात सुनी अनसुनी कर दी मगर पार्वती ने तो हठ पकड़ ली । शिव जी को तब पार्वती की जिद्द पूरी करनी पड़ी । उन्होंने उन पर अनिय का छांटा दिया । देखते देखते सभी खिलौने चहचहाने लगे । तब से कठपुतलियाँ इसी चहचहाहट में बोलती हैं । कठपुतली भाट जब अपना खेल प्रारंभ करता है तब सर्व प्रथम स्तुति के रूप में शिवजी की इस रूप में स्तुति करता है ।

बैल चढ़ै शिवजी मिलै पूरण हो सब काम ।
खेल काठ पुतली करा ले कै हीर को नाम ।

इससे भी कठपुतली के उद्भव सम्बन्धी उक्त कथन की पुष्टि होती है ।

27.05 कठपुतली की शैलियों

हमारे देश में कठपुतलियों की कई विभिन्न शैलियाँ हैं । इनमें राजस्थान की सूत्र संचालित यानी धागा पुतली के अलावा उड़ीसा की साखी कुढई, केरल की तोलपावा कुतुनामी, आन्ध्र की छाया पुतली, तमिलनाडु की बोम्मालाट्टम, बंगाल की छड़ी, गोवा की पिंगुली, उत्तर प्रदेश की गुलाबो सुताबो पुतलियां बहुत प्रसिद्ध हैं । राजस्थान में ललुआ पुतली भी पुतली का एक प्रकार रहा है । ललुआ बच्चे को कहते हैं । इसमें काठ का बना धड़, दो हाथ तथा दो पाव सब अलग-अलग बने होते हैं । इन्हें पुतली चालक अपने दाहिने हाथ की अंगुलियों में धारण करता हैं । बीच वाली अंगुली में धड़, उसके पासवाली दोनों तरफ की अंगुलियों में हाथ और शेष अंगूठे तथा छोटी अंगुली में पाव पिरो दिये जाते हैं । हथेली के बीच एक गुदगुदा कपड़ा रखकर इन अलग-अलग अंगों को आपस में जुड़े होने का भ्रम पैदा किया जाता है । इसे पुतली कलाकारों के बच्चे धारण कर एक तरह का अभ्यास करते हैं जिससे वे सीख सकें कि कौनसी अंगुली कैसे चलाने पर पुतली कैसी हरकत करती हैं ।

उदयपुर का भारतीय लोककला मंडल पहला प्रयोक्ता है जिसने कठपुतली के क्षेत्र में बड़े क्रांतधर्मी प्रयोग किये । इसके संचालन देवीलाल सामर ने सन् 58 में मारवाड़ी निवासी जीजोट के नाथू भाट के कठपुतली दल को आमंत्रित कर पारम्परिक शैली में अभिनव प्रस्तुति की रामायण नाटिका तैयार करवाई । नाथू भाट के पूरे परिवार को तब मैंने ही कठपुतली का एक-एक बोल रटवाया और उसकी पत्नी टोलकी को पूरी पद्यबद्ध कथा कंठस्थ करवाई । यह सौभाग्य ही रहा कि मंडित जवाहरलाल नेहरू ने नागौर में पंचायत राज के उद्घाटन पर इस वाटिका को लोकार्पित किया ।

यही नहीं, अमरसिंह राठौड़ के पारम्परिक खेल को सामरजी ने अपने कलाकारों के हाथों पुनर्जीवन दिया और मुगल दरबार के नाम से उसे बड़ा भव्य और आकर्षक बनाया । परिणाम यह हुआ कि 1965 में जब रूमानिया में तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय कठपुतली समारोह हुआ तो भारत की ओर से सामरजी और उनके लघु कलादल को भेजा गया जहा इस दल को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ । इस समारोह में विश्व के 32 राष्ट्रों के पुतली दलों ने भाग लिया था । जिस भारत के कठपुतली कलाकार पुतलियों के प्रदर्शनों से न केवल पुतलियों को अपितु अपने परिवारों तक को नहीं पाल पा रहे थे उसे देश की के कठपुतलियाँ पूरे विश्व की आंखों पर अपना कीर्तिमान अंकित कर देगी, यह सबके लिए, भारत स्वयं के लिए भी बड़ा अचरज भरा विस्मयकारी योग था । इसके बाद तो कलामंडल ने बहुत से प्रयोग किये शिक्षा के क्षेत्र में, समस्याग्रस्त बालकों को लेकर, बीमारों के लिये, सबमें बड़ी सराहना ओर सफलता मिली ।

हमारे यहाँ तो कठपुतलियां जन-मन-रंजन को ही जाग्रत करती रही पर बाहर के मुल्कों ने तो बड़े क्रांतिकारी प्रयोग किये इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम बालशिक्षण में पुतलियों का प्रवेश हुआ । रूस में बालशिक्षण के साथ हस्तकौशल के रूप में कठपुतलियों ने बड़ा अचरज दिखाया । इटली में तो कुछ स्कूल ऐसे हैं जहा पुतलियाँ विविध विषयों की शिक्षा देती हैं। फ्रांस जर्मनी रूस मे मानसिक रोगियों के उपचार मे पुतलियां बड़ी प्रभावी सिद्ध हो रही है । बहुत समझने बुझाने पर राजस्थान के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने पुतली को आशिक रूप में, क्राफ्ट विषय के रूप में मान्य किया । शिक्षक-शिक्षिकाओं को प्रशिक्षण भी दिया मगर बात आगे बढ़ नहीं पाई । राजस्थान संगीत नाटक अकादमी ने कई शहरों में कठपुतलियों के प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये । इधर पपेट के साथ मपेट नामक एक निराली शैली विकसित हुई जिसमें पुतली और आदमी दोनों साथ -साथ अपना करिश्मा दिखाते हैं पर आदमी भी पुतली होने का ही भ्रम दिये रहता है ।

इससे पारम्परिक कठपुतली कलाकारों में भी एक नई हलचल ने जन्म लिया । वे अल्प बचत, बीमा, परिवार कल्याण, प्रौढ़ शिक्षा, स्वच्छ, साक्षरता जैसे विभागों से जुड़े ओर अपनी पुतलियों की पिटारी ले प्रचार-प्रदर्शनों में लग गये लेकिन आज भी उनकी स्थिति वही ढाक के तीन पात अगर-मगर किन्तु जैसी बनी हुई है । सरकार किसी कलाकार को अपने सिर पर तो बिठा सकती है मगर कला की उन्नति तो कलाकार को स्वय को ही करनी पड़ेगी ।

27.06 नटों की प्रतिभा

राजनट गोवरधन उदयपुर के पास सवीनाखेड़ा गांव में अपने डेरे सहित रहता है । उसकी उम्र का अनुमान लगाना मुश्किल है । साथ वाले कहते हैं, 'बाबूजी सात पीढ़ी उम्र होगी । ' मैं यह सुन कर अन्दाजा नहीं लगा पा रहा हूँ ।' कौन याद रखता है कि इनकी उम्र को । कलाकार जो भी मिलता है, अपनी उम्र की ऐसी ही पहेली देता है । कोई कहता है, चार-चार महाराणाओं को देखा । कोई कहता है - छपन्या के अकाल में इतने/उतने बरस का था । कोई कहता है, मेरे वालिद उन महाराणा के समय थे, वन की उम्र पार की (पचास से साठ के बीच की उम्र) यह सब तो मैंने सुना पर पीढ़ियों से उम्र का अन्दाज मैंने पहली बार सुना इसीलिए पूछ बैठा - 'एक पीढ़ी कितनी उम्र की गिनते हो?" साथ वालों ने कहा " 'दस बरस की । " मैंने गोवरधन की उम्र सात पीढ़ी यानी सत्तर बरस निकाली पर विश्वास नहीं हुआ ।

पूछने पर गोवरधन ने बताया - 'उम्र को क्या पूछो बाबूजी, हमारी उम्र तो अपनी ताकत की उम्र है । शरीर का कोई अंग ऐसा नहीं जो सुस्ता जाए । हर समय तने के तने रहना पड़ता है । खेल नहीं करे तो शरीर ठंडा पड़ जाए फिर तो गए काम से । "

"आप लोगों की कला में बड़ा जादू हैं । " मैंने कहा तो गोवरधन अपनी बैठक छोडकर उठ बैठा और बोला - ' 'बाबूजी, हम जादूगर नहीं हैं । मगर जादू वाले भी पानी भरते नजर आते हैं । बड़े-बड़े जादूगरों ने भी हमारा खेल देखा है । हमने भी उनका खेल देखा है । हमारा खेल खरा है । कोई जादू-वाद्य तंतर-मंतर नहीं है । "

"कौन-कौन से ऐसे खेल करते हो जो जादू जैसे असर करते हैं ? "गोवरधन ने बताना शुरु किया - ' 'क्या बताए बाबूजी, हमारी सेज तो सूली ऊपर है । न धरती महें आसरा देती है न आकाश हमें गोदी देता है । सूतली की अणि को नाभि में रख चकरी लेते हैं, कच्चा पोचा हो तो सूली छेद कर

आरपार निकल जाए । जीभ पर कपड़े की गोटी रख कर छह-छह तलवारों को बैलेंस बनाते हैं । तीन तलवारें तो जीभ के टोये पर रखकर चलाते हैं । मजाल है जो तलवारें गिर जाये । जीभ पर ही लोहे की ताणी रख कर बिना उसे छुए मोती पिरोते रहते हैं । एक बांसों पर, कभी दो बास पर लम्बे-लम्बे पांवड़े भरते हैं । हाथ, मुंह और कमर में तलवारें टिका कर उन्हें तेजी से घुमाते हैं । दांतों के सहारे तीन-तीन मन वजन के लक्कड़ को रस्से से बांध उठा लेते हैं । गोलों को मुंह में ले कर तेल की कढ़ाई मे डाल ज्वाला पैदा करते हैं । छाती पर तलवार बांध तेजी से घुमाते हैं । ऐसे एक नहीं पचासों तरह के करतब दिखाते हैं ।

" 'तब डर नहीं लगता है ? मौत का भय नहीं सताता है ?" पूछने पर गोवरधन बोला - ' 'जान सबको प्यारी होती है पर मन में यह भय नहीं रखते हैं । हमारा खेल ही ऐसा है कि जरा - सा चुके कि मौत आई मौत तो छाया की तरह हमारे साथ-साथ रहती है । हम जीवन भी जीते हैं और मौत को भी जीते हैं । '

"बिना किसी शक्ति के इतने कठिन काम नहीं हो सकते । किसी ने किसी पर तो विश्वास करते ही होंगे ? कौन इकाई इष्टदेव हैं?"

गोवरधन बोला- ' 'उसके बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता । हम जैसा खेल करते हैं वह सब ताकत का खेल है । तक ऐसी ताकत तो बाबूजी बजरंगबली में ही थी । वही हमारी रक्षा करता है । देवी भवानी तो हमारे शरीर में बनी ही रहती है । यदि वह नहीं हो तो हम आग के गोले मुहँ से कैसे निकाल लें । चलते हुए ऊँट ओर हाथी को हम छलांग लगा लेते हैं । लोग बन्दूक चलाए ओर गोली हमारी छाती से चिपक जाए फिर भी हमारा कुछ न बिगड़े । लम्बे-लम्बे बांसों पर खड़े-खड़े धोड़ी चलते है, कोई गधी चल कर तो बताए । खेल के दिन हम भूखे रहते है । देवी हमारी हर समय रक्षा करती है । यदि ऐसा न हो तो कितने ही नट यमराज जी की शरण पहुँचे होते ।

"लाव यानी रस्से पर कलाबाजी करना तो नटों की खास पहचान रही है । " सुनते ही गोवरधन बोल पड़ा- ' 'यह काम तो हमारे लिए मामूली है । रस्से पर चकरी घुमाना, चकरी पर बैठ कर चक्कर लगाना, छतरी ले कर चलना । सर्कस में आपने मेमों को रस्सी पर काम करते देखा होगा, हमारी ही तो नकल है वह । हम तो गधे की गाठ बांध कर पीछे पर लादे रस्सी पर ऐसे चलते हैं जैसे सड़क पर चल रहे हों । आए कोई सर्कस वाला और करे यह काम । ' 'सुना है नट भी तरह -तरह के होते हैं, क्या यह सही है?

"हाँ बाबूजी ठीक सुना है आपने । राजनट तो होते ही हैं । जैसे हम हैं जो राजा महाराजा और बड़े-बड़े ठिकानों में जागीरदारों को अपना खेल दिखाते रहे हैं और वाहवाही पाते रहे । खूब इनाम-बख्शी भी मिला । जागीर तक मिली । दो तरह के नट और होते हैं । एक कबूतरिया ओर दूसरे डोगला । कबूतरिया में तो औरतें भी सूली पर घूमती हैं, लाव पर चलती हैं मगर हमारे राजनटों में तो औरतों का कोई काम नही ।

नट लोग बड़े स्वाभिमानी, हाजिर जवाबी और आशु कवि होते हैं । बदली हुई परिस्थिति और समय की धार को ये खूब पहचानते हैं । समसामयिक घटना-परिवेश की इनमें जबरदस्त पकड़ होती है । व्यवस्था के प्रति बड़ी पैनी मार और तीखी धार इनकी रचना प्रक्रिया में देखने को मिलती है ।

प्रत्येक खेल के साथ ढोलक की गूज और छंद-बोल इनके खेल को अर्थ देते हैं और उसकी पृष्ठभूमि को खोलते चलते हैं ।

उदयपुर की पिछोला झील में बने नटनी के चबूतरे की याद दिलाते हुए जब मैंने गोवरधन से उसकी जानकारी चाही तो उसका हिया भर आया और सुनाना शुरू कर दिया - उस नटनी का नाम सुन्दर था । और नट था जलालिया । जलालिया महलों में त्रिपोलिया में हाथी कूद गया । हाथी का नाम था चंचलगर । पिछौला में सूरजगोखडे से जगमंदरां तक नाड़ी लगाई । उस पर पाछपगां जलालिया चला । दरबार के लोगों को जलन हुई कि इसे आधा राज मिल जायेगा तो नाड़ी काट दी : जलालिया पिछौला में जा गिरा । मर गया । उसके मरने पर सुन्दर सती हुई । मरतेमरते उस सती ने श्राप दिया कि कोई नट आगे यहाँ खेल नहीं दिखाएगा ।

"जलालिया माना हुआ नटबाज था । महाराणा ने उसकी कलाबाजी पर बंबोरा के पास का चांवड्या गांव तथा बारह बीघा जमीन दी और बारह ढोलकी मोहरों से भर दी । उसे जनाना मर्दाना दुपट्टा और सरपाव दिया । सोने के कंठी- कड़े दिये । छोगा पछेवडी चंपा घोड़ों और सुन्दर नाम का हाथी दिया । यह जलालिया भी सवीनाखेड़ा का ही था ।

अपने पुरखों के सम्बन्ध में गोवरधन ने बताया कि चित्तौड़ की लड़ाई में लड़कर दला नाम का नट जयमलजी राठौड़ के साथ बदनोर गया । इन दलजी का लड़का रूपोजी था । रूपोजी के भानाजी हुआ । भानाजी का बेटा मैं खुद हूँ । बदनोर में दलाजी की मेड़ी है । इस पर उसने एक करिताई सुनाई ।

धम कीधो पन्त कीधो पन्त की बांधी मेड़ी ।
म्हेल तो सांवलदानजी का मेड़ी बट दला की ।

धर्म किया पुण्य किया, पुण्य से मेड़ी बनाई । महल तो सांवलदानजी के कहलाये और मेडी दला नट के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

गोवरधन ने कहा कि अब उनकी कला को कोई नहीं पूछता । पेट नहीं भरता । कभी-कभी कला मंडल, संगीत नाटक अकादमी और सांस्कृतिक केन्द्र से बुलावा आता है । पर उससे परिवार का पालन पोषण नहीं होता । समय बड़ा खराब आ गया है ।

"डेरे में कितने लोग होते हैं जो खेल करते हैं?" गोवरधन ने कहा - " जैसा बुलावा आता है वैसा ही डेरा बना लेता है । पैसे कम मिले तो ज्यादा आदमी को कैसे ले जाऊं । " उसने अपने साथ के लोगों मे से ही एक-एक का परिचय कराया- यह मेरा लड़का हीरालाल । यह मेरा भतीजा वेणीराम और अमरचंद । यह मेरा जंवाई भंवरलाल और के यह हीरालाल एक दूसरा भतीजा ।

इन सबको भी सिखा रहा हूँ पर सीखसीख कर किसको बतायेंगे । मेरी तो जिंदगी जैसे-तैसे पूरी हो जायेगी । " नट ही नहीं, अन्य कलाकार भी अपने साथ यही समस्या लिये हैं ।

27.07 भांड एवं भांडाई

भांड एक जाति है भांडाई करना इनका खास पेशा रहा है । यह भांडाई प्रशंसामूलक भी होती है तो गालीमूलक भी । रंगमूलक भी होती है तो व्यंग्यमूलक भी । नकलपूलक भी होती है तो सांगमूलक भी । हंसीमूलक भी होती है तो रंगमूलक भी । ये भांड किसी के नहीं होते और सबके होते हैं । लिहाजा लाज सब खूंटी पर टंगे रहते हैं । कहते भी हैं कि भांड भुवायां और हींजडा ये तीनों कहीं निकल जाएं,

अच्छों-अच्छों को ' कर पटकी दे देंगे । इनसे जीत नही सकता और ये कहीं भूखों भी नहीं मरते । बड़े कबदी और कमाल होते हैं ये ।

राजस्थान के भांड बड़े नामी रहे हैं । राजा महाराजाओं के वहां अपनी कला चातुर्य से इन्होंने बड़े-बड़े इनाम पाये । जागीरें तक प्राप्त कीं । आज इनकी संख्या बहुत कम रह गई है जो अपना पारंपरिक 'पेशा ' अपनाये हुए हैं । अब उन्हें बहुरूपिया कहा जाने लगा है और बहरूपिया तो कोई भी हो सकता है । जो तरह-तरह के रूप धारण करे । बहुत रूप बने वह बहुरूपिया । कठपुतली के अमरसिंह खेल में बहुरूपिया तमाशा करने आता है । इसका नाम ही बहुरुप है । इसके लिए कहा जाता है - और ये देखो बहुरूप भांड का लड़का । ये जनाना चेहरा । ये मरदाना चेहरा ।" इस एक ही पुतली के एक ओर पुरुष तथा दूसरी ओर महिला बनी होती है । एक नाम इनका भेषिया भी है । भेषिये प्राय : धार्मिक भेष ही धारण करते हैं । राजा महाराजा तथा बादशाहों ने अपने शासन के दौरान बहुरूपियों की बड़ी सेवायें ली हैं ।

इसमें कोई शक नहीं कि भांड किसी की नकल निकालने में जितना सिद्धहस्त होता है उतना कोई दूसरा प्राणी नहीं होता । चाहे बोली-चाली की दृष्टि से, चाहे वेशभूषा की दृष्टि से, चाहे भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से; यह जिसका भी स्वांग भरेगा, पूरा वही-वही लेगा । सांग चाहे गाडोलिया लुहार का हो चाहे कंजर-कंजरी का । चाहे गायरी का हो चाहे भोपा भोपी का । फकीर पठान बणजारे का हो या चाहे पागल लैला या मजनू का, ईरानी का हो चाहे पुलिस सेठ या पागल का । राक्षस का हो या और किसी का स्वांगों की कोई कमी नहीं है पर कोई पहचान नहीं पाएगा कि यह किसी की नकल है। यह नकल असल से भी भारी पड़ती हे ।

प्रतिवर्ष अपनी ओर से तुकबंध जो टीपणा ये निकालते हैं उसमें भी इनकी नकल को जोरदार छाप मिलती है । लोक जीवन में भी 'नकल तो भांड की ' एक कहावत बनी हुई है । टीपणे की तुकबंदी का ' 'ततवार गंगा स्नान/ पडी पंड पावणी/पाप नैं खै करणी / धरम नै उदै करणी / मालाचंद जी की फतै पाल है / सम्यौ तो सांड है । सम्या का भगतवान बंचै

सतरा मण का कांदा / अठारा मण की बाजारी / नब्बे मण का शकरकंद / रींगणा पचास मण का / लूंग डोडा पंदरा मण का / तजारो तेरा मण को / मक्की तो अस्सी मण की / जुवार नब्बे मण की ।

उतारो मथरा नगरी को ?' गिरत तो गाय को / दही तो भैंस को / मनवार राबड़ी की / खींचडी करमाबाई की /, पुत्र तो सरवण / नकल तो भांड की / बरदावो भाट को । "

ऐसी टीपणी तुकबन्दी में कभी-कभी भांड-भांड के आपस में होड़ चलती है कि कौन अच्छी तुकबंदी करता है और लोग किसको सराहते हैं । अडभोपा, भाट और भविष्यवक्ता बनकर भी भांडों ने जो सही सलामत काम किया उससे इनकी प्रतिभा क्षमता, बुद्धि चातुर्य और ज्ञानगुण का पता चलता है ।

चित्तौड़ का जानकीलाल भांड राजस्थान का सिरमौर है । देश में ही नहीं, विदेश में भी इस कलाकार ने अपना सिक्का खनखनाया है । अपने पिता हजारी के साथ भी इन्होंने कई स्वांग निकाले हैं । शिवाजी, प्रताप, झांसी की रानी बनकर जब हजारी निकलते हैं तो लोग दांतों तले उंगली उबाकर रह जाते हैं और यह पता नहीं कर पाते कि यह हजारी की करामात है ।

हजारी के अपने सांगी जीवन के कई किस्से हैं । इन किस्सों को सुनाते समय लगेगा जैसे सिनेमा के चित्र दृश्यमान इकाई हो रहे हैं । एक किस्सा सुनाते हुए उन्होंने बताया कि एक बार उदयपुर महाराणा भूपालसिंह जी पिछौला में नाव की सवारी में थे तब नाव के पास एक मगरमच्छ ने अपना मुंह निकाला सबने उसे सचमुच का मगर ही समझा पर बाद में जब कहा गया कि वह रामचंद ब्राह्मण नामक बहरूपिया था तो महाराणा ने उसे खूब शाबासी दी और धोबा भर चांदोड़ी रुपये दिये । हजारी ने उसी दिन से मन में यह बात बैठाली के वे भी अपनी कला से कभी पीछे नहीं रहेगें। बल्कि इससे भी सवाया मान लेंगे और यह पाया भी । इन्हीं महाराणा से धोबे भर ही नहीं, गाठ बांध चादोड़ी पाए ।

हजारी के दादा जोरा थे । ये मांडल के पास भांड का खेडा में रहते । महाराणा फतहसिंहजी ने इन्हें चित्तौड़ बुला लिया । इन्होंने अपनी नकलाई में बहुत दूर-दूर तक नाम कमाए थे । एक बार चित्तौड़ से जंगल में फतहसिंह महाराणा शिकार पर निकले । थोड़ी दूर उन्हें एक असली नवहत्था शेर होने की भनक मिली । तब निशाना साधा गया । शेर के गोली लगी कि वह पांव के बल खड़ा हो गया । सीने से खून फव्वारे की तरह छूटा । तब ही शेर बोला - ' 'खम्मा घणी अन्नदाता, म्हूँ जोरो भांड हूँ ।" महाराणा बड़े चिंतित हुए । बोले कि जोर मारा गया । जब पास पहुँचे तो जोरे ने अपना जिरह बख्तर उतार नाले में लाल रग से सने हाथ धोए । महाराणा बड़े खुश हुए और मोहर कारी के पास ही दस बीघा जमीन दी जो अभी हजारी के नाम की है । कितना बड़ा हौंसला हिम्मत ओर साहस का काम है इनका । अपनी जान को जोखिम में डालकर किस आत्मविश्वास से जीते हैं ये ।

यूं तो भांड़ बड़ा शरीफ सज्जन और स्याणा होता है पर जब वह नागाई पर उतर आता है तब उस पर किसी का बस नहीं चलता । धुंलंडी के दिन तो हजारी कई बार अपना मुंह काला कर नंग-धडंग हो गधे पर सवारी कर निकले हैं । भांड शिष्ट है तब तक वह शिष्ट है पर जब वह बिगड़ा तो कोई साथ हो, अबै तबै करने में देर नहीं करेगा ।

अपनी खुद की भांडाई में जानकीलाल ने मुझे सुनाया कि जब वे किसी गाव जाते हैं यह सुनाकर नेग पाते हैं ।'

'भांड आया नैं गऊंवा रा गाडा आया/ भांड गया नैं रामजी का भाई आया ।

गावा फाटा भांडव्या/ दाढ़ी राखी नैं भांडव्या/धरऊ बार निकल्या ने भांडव्या/ लुगाई नैं दी ने भांडव्या/परग्या ने भांडव्या/भांड मरयो नैं म्हादेवजी पैदास वै/ भांड की लुगाई मरी नैं पारवती पैदास वै/ भांड के छोरा छोरी मरया नै खेड़ा-खेड़ा देवल पेदास वै/ भांड की साली मरी नैं गहो पैदास वै । भांडकी सासु मरी नैं शीतलामाता पैदास वै । "....

एक मजाक और देखिए । भांड के किस-किस बात के सौगन्ध हैं । बड़ी बहादुरी से वह अपनी इस बात का बखान करता हे ।

' भांड के घणी-घणी बात का सौगन है । हाथी पैं बैठ तोरण मारै नीं । मरयां पछै दाग हलाणा नी/ सोना री थाली में बैठ जीमा नीं/ जीवता सांप नैं खेलवां नीं/ हतेली में भाटा बाधा नीं ।

जब कोई यजमान नेग देने से मना कर दे तो उसको ये छोड़ते नहीं हैं । अपनी तुकबंदी द्वारा हंसीमजाक में ये उसकी खाट खड़ी कर देंगे । अपनी वाचाल त्वरा बुद्धि द्वारा उसे जो आशीर्वाद देंगे उससे वह यजमान अपना नाक कटा कर को देकर ऊपर से हाथ जोड़ भांड को विदाई देगा । भांडों ने ऐसे कई तीसमारखाओं तीरंदाजों का अपनी भांडाई से पानी उतारा है । देखिये कैसी लपेट देता है वह-

"जीती रे जजमान नैण दोई थारा फूटी ।
जावे देश परदेश थनै चोर डाकू लूटी
निकलै घर के बारणै तो बत्तीसी दांत पूरा टूटी
जावै कदी जैल में जो जनम -जनम नीं छूटी
थारै मकाम कै बारणे आकड़ा खेजडा उगी
थांनै अन रो दाणी मलजो मती
घणी घणी खम्मा अन्नदाता पिरथीथान ।
यों आज तक नहीं सुना गया कि कोई भांड बिना दातारी लिये चला गया ।

भांड राजस्थान के ही नहीं, अन्य प्रदेशों के भी बड़े नामी हैं । सब भांडों के अपने-अपने जजमान होते हैं जहा वे शादी-विवाह, जन्म आदि के मौके पर जाते हैं और रिझाकर अपना नेग पाते हैं गांवों में जब ये डेरा डालते हैं तो महीने भर तरह-तरह के स्वांग लाकर आनन्द-ठाठ किये रहते हैं । फरमाइश पर भी ये अपना स्वांग देकर वाह-वाही लूटते हैं।

राजस्थान का घोड़ों का व्यापारी स्वत देखिये । कैसे वह घोड़े की तारीफ के आकाश में पुल बाँधता है ।

घोड़ा लीजिए घोड़ा, ३-३ लाख रिप्या ना घोड़ा है । अणाँ घोड़ा में कई खामी नी है । घोड़ों हवा रे माफक उडै । घोड़ों घास-पाणी नी लै । जलेबी रो नाश्तो करै । ऑख्यां रा आँधा और पगा रा खोड़ा पण पहाड़ाँ लाँघै । हल्दीघाटी रा दुसमन भागै । "

इसी के मुकाबले के उत्तर प्रदेश के नक्कालों के घोड़े ने नखरे और ठाठ देखिये -

"घोड़ा चलने में बहुत खाये थोड़ा । क्या कमाल है ? कमल का सिर, गुलमेंहदी की गरदन, चम्पा से सजी अयाल है । गेंदे का गूंथन, शीशम के ओठ, कामिनी के दांत, मोगरे की नाक, सूरजमुखी की पेशानी है और यही इसके असली होने की निशानी है और देखिये जनाब, इसकी नरगिस की आखें, गुलचाँदनी की पुतली, मोतिये का तिल, नजर मिलते ही करे बिसमिल । जूही की पीठ, खुशनुमा सीट, केले का फूल-सा सवार, सूरत में गुले-अनार । गुलाब का पेट, समन्दरी, लपेट, अनारकली की गडगड़ी । हरसिंगार का सीना, इत्र जिसका पसीना । इस घोड़े पै ठैठ, मैं गया ठेठ । घोड़े को फटकारा, मगर, घोडे को नहीं मारा । घोड़ा छूटा है यारो फतहसागर में, मगर निकलेगा पिछौला में । नटनी के चबूतरे पर हिनहिनायेगा। करने को हवाखोरी करेगा और आपके रूमाल को अपनी आयल में धरेगा । "

ऐसे फतवे पर फतवा जोड़ता भांड सबका सत्कार करेगा और लाख सत्कार पा लेने पर भी किसी का होकर नहीं रहेगा। मुखसज्जा यानी मेकअप को ये रंगीरी कहते हैं । रंग स्वय ही तैयार करते हैं । रंग मुँह से उतारने को उतरहट कहा जाता है । इसके लिए लोशन भी ये स्वय ही बनाते हैं ।

गाव में महीने-महीने भर तक भांड का पड़ाव रहता है । नित नए स्वांग लाकर सबका बड़ा रंजन होता है । यों विशेष अवसर पर स्वांग भी विशेष ही लाये जाते हैं । इनमें दशहरे पर हनुमान, शिवरात्रि पर शिव, ईद पर फकीर, होली पर नकटी, दीवाली पर सेठ का स्वांग बनाते हैं । जानकी ने बताया कि चित्तौड़ से लगाकर कालवाड़ चौराहे तक छह सें गांव हमारे हैं । इनमें जब भी हम जाए, हमारा नेग तैयार है । ब्याह शादी पर हमें पहुंचना होता है पर न भी पहुंचे तो भी उसका एक रूपया तो हमारा सुरक्षित है जब भी जाएंगे, मिल जाएगा ।

जानकी ने बताया कि अब वह बात नहीं रही और भांड अपना वह पेशा भी नहीं करते हैं पर मेरे तो भगवान की पूरी महरबानी है । बुलावा इतना आता है कि घर पर होली, दिवाली भी नहीं रह पाता हूँ । सरकार भी बहुत बुलाती है । विदेश में भी उत्सव कर आया हूँ । इसी खातर बाईस बरस की नौकरी बंधी बंधाई छोड़ दी ।

केलवा के परसराम भांड ने अपने स्वांगों द्वारा बड़ा नाम कमाया । इनके कई स्वांग देश-देशान्तर में बड़े सराहे गये । अपनी वाणी द्वारा इन्होंने अपने प्रदर्शनों की अमिट छाप दी और जगह - जगह पुरस्कारों से बड़ा नाम कमाया । आजादी के बाद ये पहले कलाकार रहे जिन्होंने इस कला की पहचान राजस्थान के बाहर दूर-सुदूर दी । उदयपुर के लोककला संग्रहालय में इनके विविध स्वांग चित्रों की प्रदर्शनी देख प्रतिदिन ही दर्शक इनसे मुखातिब होकर सराहते पाए जाते हैं । अपना उद्भव शंकर से मानते हुए इन्होंने बताया कि शिव विवाह में जिस प्रथम पुरुष ने अपने गाल का बाजा बजाकर उनका जो मनोविनोद किया उसने बड़ा मान पाया फिर तो उस पुरुष की विशेष जाति की चल पड़ी जो भांडाई कर रिझाने का पेशा अपनाती रही । इस भांडाई ने उन्हें भांड बना दिया ।

27.08 इकाई सारांश

इस प्रकार आपने अध्ययन किया कि भाट, नट एवं भांडों की लोककलाएँ किस प्रकार सक्रिय हैं एवं राजस्थानी जीवन का अभिन्न अंग है । राजस्थान में धागा कठपुतली लोकप्रिय है एवं इसके खेल के माध्यम से उन ऐतिहासिक चरित्रों का प्रदर्शन किया गया है जो जीवन के शाश्वत मूल्यों का महत्व दर्शाते हैं । अमरसिंह राठौड़ की कठपुतली का खेल उन्हीं मे से एक हैं भांड का प्रदर्शन वैभवशाली अतीत से परिपूर्ण है । यहां के भांडों का स्वांग किसी को भी भ्रम में डाल सकता है । नटों के करतब शताब्दियों से लोगों के घर में स्थान किये हुए हैं । रुचिकर तथ्य है कि ये लोक कलाकार बहुत साहसी एवं स्वाभिमानी होते हैं । बल्कि प्रकृति के गुणों का श्रेष्ठ माननीय प्रदर्शन करते हैं । उदयपुर के भारतीय लोककला मंडल ने इन प्रदर्शनों को पुन : जीवनदान देने का एक उल्लेखनीय कार्य किया है ।

27.09 अभ्यासार्थ प्रश्न : -

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये ।

(1) राजस्थान में कठपुतली की शैली, विषय एवं प्रदर्शन पर प्रकाश डालिये?

(2) नट अपनी परम्पराओं को किस प्रकार प्रदर्शित करते हैं, उल्लेख कीजिये?

(3) भांडों का प्रदर्शन लोककला का एक सशक्त माध्यम है, स्पष्ट कीजिये?

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये ।

(4) अमरसिंह राठौड़ की कथा को कठपुतली के खेल में किस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है?

(5) नटों की श्रेणियों के बारे में बतलाइये?

(6) भांड मुख्यत: कौनसा स्वांग रचना पसन्द करते हैं?

इकाई सं. 28 " राजस्थान में दरबारी ' एवं शिष्टाचार

इकाई संरचना

28.01 उद्देश्य
28.02 प्रस्तावना
28.03 सामन्ती प्रथा
28.04 दरबारी रीति रिवाज
28.05 दरबारी गठन एवं शिष्टाचार
28.06 दरबारी उत्सव एवं त्यौहार
28.07 कतिपय परम्पराएँ
28.08 इकाई सारांश
28.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

28.01 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ पायेंगे कि : -

(1) राजस्थान में सामन्ती संस्कृति किस प्रकार की थी ।

(2) राजदरबारों का गठन किस प्रकार का था ।

(3) दरबारी संस्कृति में मुख्य आचार व्यवहार किस भाँति था ।

(4) दरबारी मान्यताओं का क्या स्वरूप था? दरबारी जीवन की गति किस प्रकार से भिन्न थी एवं प्रभावशाली थी ।

इस प्रकार आप एक विशिष्ठ संस्कृति का परिचय पा सकेंगे और जान पायेंगे कि राजस्थानी संस्कृति के कितने विविध प्रकार एवं आकर्षण बिन्दु थे ।

28.02 प्रस्तावना

प्राचीन राजस्थान मे राज्य व्यवस्था एवं दरबारी प्रणाली की विस्तृत जानकारी नहीं है । लेकिन मध्यकाल से इन परिस्थितियों का पूरा परिचय मिल जाता है । इसका एक मुख्य कारण तो उस काल की प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री का होना है एवं द्वितीय दरबारी संस्कृति एवं राज्य व्यवस्था के मध्य परस्पर घनिष्ठ सम्बंधों का स्थापित हो जाना था । दरबारी संस्कृति वास्तव में राजकीय संस्कृति थी । जन साधारण इससे प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ नहीं था । हाँ उस काल का वैश्य वर्ग, कर्मचारी वर्ग एवं अन्य विशिष्ट लोग इस संस्कृति को अपनाने में अभिमान समझते थे । वस्तुत : इस संस्कृति को समझे बिना दरबारों की सत्ता सूनी थी एवं अभिजात्य वर्ग के शिष्टाचारों का कोई अर्थ नहीं था और नहीं आज है । अत: राजस्थानी संस्कृति को समझने के. लिये इस पक्ष को जानना आवश्यक है उस क्रम में सबसे पहले आजादी से पहले के वर्षों की सामन्ती व्यवस्था का परिचय भी लेना उतना ही आवश्यक है ।

28.03 सामन्ती प्रथा

राजस्थान के इतिहास में सामन्ती व्यवस्था रही है । इसका उद्भव वहा के शासकों की कुलीय परम्परा से हुआ था । राज्य केवल शासक की सम्पत्ति नहीं थी, अपितु कुलीय सामन्ती की सामूहिक धरोहर । राज्य की स्थापना के साथ ही सामन्तों का अस्तित्व आरम्भ हो गया । राजा इन सामन्तों के सहयोग से ही राज्य की स्थापना व इसकी सीमा में विस्तार करने में सक्षम हुआ था अत: वे सभी अपने को इसका भागीदार समझते थे । उनकी दृष्टि में राजा कुल का प्रधान था । उनका राजा के साथ बन्धुत्व व रक्त का सम्बन्ध था । शासक की स्थिति बराबर वालों में प्रथम के समान थी । सामन्त घरेलू और राजनीतिक सभी मामलों में समानता का दावा करते थे । राज्य के महत्वपूर्ण और विश्वसनीय पदों पर सामान्यत: इकाई स्वकुलीय सामन्तों की ही नियुक्ति की जाती थी । एक ही कुल के सदस्य होने के कारण तथा स्वामिधर्म के सिद्धान्त से उत्प्रेरित होकर वे राजा की सेवा करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे । युद्ध के समय सामन्त राजा की सहायता करते थे । उनमें यह भावना निहित थी कि वे अपने पैतृक सम्पत्ति की सामूहिक रूप से रक्षा करने हेतु ऐसा कर रहे हैं ।

राजस्थान में मुगलों का प्रभुत्व स्थापित हो जाने पर राजपूत राज्यों की सामन्त व्यवस्था में परिवर्तन आने लगा था । शिष्टाचार अब सामन्तों का अपने राजाओं के साथ सम्बन्ध भाई बन्धु का न रहकर स्वामी और सेवक का होने लगा था । राजपूत नरेशों ने व्यवस्थित तरीके से उनके अस्तित्व को सैनिक सहयोगियों के रूप में बदलना आरम्भ कर दिया । सैनिक सहयोग देने के एवज में उन्हें जागीरें दी जाने लगी । स्वकुलीय राजपूतों के अतिरिक्त अन्य राजपूतों को भी जागीरें दी गईं थी । उनका राजा के साथ सम्बन्ध स्वामी और सेवक का ही था । मुगल सम्राटों का अनुसरण करते हुए सामन्तों को नियन्त्रित करने का प्रयास किया गया । मुगलों की मनसबदारी प्रथा से प्रेरणा लेकर राजपूत राजाओं ने भी अपने सामन्तों को पद और प्रतिष्ठा के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजित कर दिया । मारवाड़ में मुख्यत : तीन सामन्त थे- राजवी, सिरायत के सरदार और मुत्तसद्दी इसी प्रकार मेवाड़ में 'सोलह ' (प्रथम श्रेणी), बत्तीस (द्वितीय श्रेणी) 'गोल (तृतीय श्रेणी) में सामन्त विभाजित थे इस सामन्ती व्यवस्था में बनेडा और शाहपुरा का विशिष्ट स्थान था । यहाँ के शासक राजा कहलाते थे । उनका प्रथम श्रेणी के सामन्तों से ऊंचा स्थान था । कोटा राज्य में 'हजूर का जागीदार ' और देश का जागीरदार के नाम से सामन्तों को सम्बोधित किया जाता था । बीकानेर में राज्य के सामन्त मुख्यत: तीन वर्गों में विभाजित थे । (1) राव बीका के वंशज (2) राव बीका के भाई और चाचा के वंशज (3) स्थानीय परदेशी अधीनस्थ सामन्त । प्रथम दो वर्गों के सामन्त आसामीदार चाकर पट्टायत कहलाते थे । जयपुर में बडेतौर पर सामन्त दो श्रेणियों में विभाजित थे - ताजीमी और खासचौकी । जैसलमेर राज्य में भी राजवी और रावलोत के नाम से सामन्तों का वर्गीकरण किया गया । इन राजपूत राज्यों के सामन्त ही मुख्य दरबारी माने जाते थे । इनके अतिरिक्त मन्त्री राज्य के उच्च पदाधिकारी तथा खवास - पासवान भी दरबार में सम्मिलित होते थे । मन्त्रिगण सामान्यत : युद्धप्रिय जातियों के न होकर अन्य जातियों में से होते थे । वे विशेषकर कायस्थ, वैश्य, ब्राह्मण जातियों में से होते थे । प्रशासन का कार्य इन्हीं के द्वारा किया जाता था । दीवान, बख्शी यहां तक की कभी कभी प्रधान भी इन्हीं जातियों में से नियुक्त किए जाते थे । मेवाड़ में इस सम्बन्ध में एक दोहा प्रसिद्ध था : -

और मन्त्री सब कीजिए, एक कीजिए बाणियां ।
उसे बुलावे मीठों बोले, करें मन का जाणिया । ।

यह वर्ग प्रशासन एवं राजनीति में बहुत प्रभावशाली होता था । सामान्यत प्रशासन के दीवान या प्रधानमंत्री का पद इन्हीं वर्गों में विशेषकर वैश्यवर्ग के पास रहा करता था । इस बात के भी उदाहरण प्राप्त हुए हैं कि नाजिरों ने भी दीवान एवं बख्शी के पद का कार्यभार सम्हाला था । बीकानेर में 17 वीं शताब्दी के अन्त में आनन्दराम नाजिर प्रभावशाली दीवान था ।

ये मन्त्री व सलाहकार मुत्तसद्दी के नाम से जाने जाते थे । प्रधान का पद सामान्यत: प्रमुख राजपूत सरदारों को दिया जाता था । मेवाड़ के सलूम्बर के रावत को राज्य का प्रधान पद वंशानुगत रूप से प्राप्त था जिसे ' भांजगड़' कहते थे । उसे कुछ विशेष अधिकार प्राप्त थे । यदि किसी को जागीर दी जाती थी तो उस अनुदान पत्र पर सलूम्बर के रावत की 'सही ' (स्वीकृति या अनुमोदन) होती थी । 'सही ' के तौर पर उस अनुदानपत्र पर भाले का चिन्ह लगा देता था तभी वह अनुदान पत्र वैध माना जाता था । यदि राजा किसी को गोद लेता था तो अन्य उमरावों की सहमति के साथ सलूम्बर के रावत की सहमति आवश्यक थी । महाराणा के अनुपस्थिति में नगर शासन और प्रासाद रक्षकों का उत्तरदायित्व सलूम्बर रावत का होता था । युद्ध के समय उसकी सेना सबसे आगे चलती थी । (हरावल का अधिकार) मारवाड़ में चांपावत सरदार आहूआ और पोकरण के ठाकुर को प्रधानगी का पद दिया जाता था । प्रधान को गांवों के दान-पत्रों व जागीरों के पट्टों पर हस्ताक्षर करने का अधिकार था । दरबार में महाराजा को नजर करते समय सर्वप्रथम प्रधान द्वारा नजर की जाती थी । उत्सवों और सवारी के अवसरों पर प्रधान महाराजा के ठीक पीछे हाथी पर सवार रहता था और चँवर किया करता था । बीकानेर में महाजन के ठाकुर को तथा जयपुर में चौंमू के ठाकुर को इस पर नियुक्त किया जाता था । चौंमू का ठाकुर आमेर का पटेल कहलाता था । बाद में वह मुसाहिब कहलाने लगा ।

दरबारियों में तीसरा स्थान खवास-पासवानों का था। वे राजा के निजी व व्यक्तिगत चाकर होते थे । मारवाड़ में शासक की तलवार व ढाल रखने का अधिकार खींची राजपूत को था। चंवर और मोंरछल रखने का काम धाधलों को, जुलूसी पंखा और खास मोहर रखने का काम गहलोतों को, ड्योढ़ी के प्रबन्ध का काम सोभावतों को और महाराजा के हाथी की सवारी करने पर महावत का काम आसायचों को सौंपा गया था । इसी प्रकार दूसरे कार्यों के लिये भी अन्य खास -खास वंश के राजपूत नियत किए गए थे । खींची राजपूत और धाभाई महाराजा के अंगरक्षक थे । राजस्थान के सभी राजपूत राज्यों में लगभग इसी प्रकार की व्यवस्था थी । इन खवास पासवानों को नियामक रूप से दरबार में उपस्थित होने का अधिकार नहीं दिया गया था फिर भी वे महाराजा की सेवा में वहा रहते थे और उनका दरबार में काफी प्रभाव था । वे महाराजा के पीछे खड़े रहते थे और चंवर करते थे तथा शाही छतरी महाराजा के ऊपर रखते थे । महाराजा की तलवार व ढाल उनके पास रहती थी । 18 वीं शताब्दी में निम्न वर्ग के लोगों को खवास-पासवान नियुक्त किया शिल्प जाने लगा था। नाजर, नाई, दर्जी महावत राजा के निजी दरबारी थे ।

28.04 दरबारी रीतिरिवाज

राजस्थान के राजपूत राज्यों में दरबार भवन थे जहा दरबार लगाये जाते थे । दरबार-ए-आम और दरबार-ए-खास के लिए पृथक भवनों की व्यवस्था रहती थी । राजतिलक के दरबार के लिये भी स्थान निश्चित था । मेवाड़ में राजतिलक का दरबार पहले 'पनेरा ' स्थान पर लगाया जाता था । बाद में दिलखुशाल महल के सामने दालान में नवचौकी के पास लगाया जाने लगा । दशहरा, होली और दीवाली त्यौहारों व समारोह सम्बन्धी दरबार दरीखाने में नवचौकी के पास सभाशिरोमनि स्थान पर

लगाया जाता था । खास दरबार का आयोजन कृष्ण विलास महल में होता था । मारवाड़ के गढ़ में दौलतखाने में राजतिलक दरबार लगता था जबकि राजतिलक श्रृंगार चौकी पर किया जाता था । मन्त्रणा हेतु खासदरबार फतहमहल में लगाया जाता था । बीकानेर में महाराजा का राज्याभिषेक फूलमहल में किया जाता था । राजतिलक व त्यौहार समारोह सम्बंधी दरबार के लिए करणमहल निश्चित था । आमेर में भी दीवान-ए -आम और दीवाने -ए-खास के हॉल बने हुए थे । गुप्त मन्त्रणा जगमन्दिर में की जाती थी ।

दरबार आयोजन के समय दरबार भवनों को सजाया जाता था । मारवाड़ में जब कभी भी विशिष्ट दरबार का आयोजन किया जाता था तब सिरायत के सामन्तों को खास रुक्का लिखकर बुलाया जाता था । खास रुक्के में ठाकुरों को सम्मान सूचक शब्दों से सम्बोधित किया जाता था । उदाहरण के तौर पर मारवाड़ के शासक ने आसोप के ठाकुर को खास रुक्का इस प्रकार लिखा था -

ठाकरां केसरीसिंघजी सु म्हारो लुहार बांचजो तथा अंग्रेज आदले सै सला विचारणी है सु सिताब (शीघ्र) हाजर आवजों सं. 1874 रा मींगसर बद 2 " मेवाड़ के महाराजा की ओर से दो प्रकार के पत्र लिखे जाते थे । एक राजकीय पत्र जिसे 'परवाना ' कहते थे और यह सहीवाला लिखता था । दूसरा निजी पत्र होता था जिसे 'खासरुक्का ' कहते थे । इस पर महाराणा के हस्ताक्षर होते थे । राजकीय समस्याओं पर विचार विमर्श करने हेतु ताजीमी सरदारों को खासरुक्का द्वारा आमन्त्रित किया जाता था । राजपूताने के अन्य राजपूत राज्यों में इसी प्रकार की व्यवस्था थी । राजपूत राज्यों में शुक्रनीतिसार जैसे प्राचीन हिन्दूग्रंथों में वर्णित दरबारी संस्कृति व शिष्टाचार का प्रचलन था । बाद में मुगलों का प्रभाव पड़ा । अत: 18 वीं शताब्दी में राजपूत राज्यों में राजपूती व्यवस्था व मुगल व्यवस्था का सम्मिश्रण दृष्टिगत होता है! कपितय स्थानीय विभिन्नताओं के अतिरिक्त सामान्यत : राजपूताने के सभी राजपूत राज्यों में दरबारी संस्कृति व शिष्टाचार एक समान ही थे ।

दरबार भवन के प्रवेश पर ड्योढीदार दरबारी का परिचय लेता तथा नियत पोशाक शस्त्र आदि का निरीक्षण करता था । सामन्तों की पोशाक विशेषकर त्यौहारों में दरबार के समय बड़ी आकर्षक होती थी । मेवाड़ में उमरावों के सिर पर अमरशाही अथवा अडसीशाही अथवा स्वरूपशाही अटपटी पण तथा शरीर पर जामा होता था, जिसका उपरी भाग अंगरखे जैसा होता था । जामा की बाहें काफी लम्बी होती थी जिन पर सिलवटें डालकर सिकुडन लाई जाती थी । कमर के नीचे घेर होता था, जो कलियाँ काटकर बनाया जाता था तथा जामे के नीचे चूड़ीदार पायजामा होता था । सिर पर पण में मांझा (एक विशेष प्रकार का चमकदार कपड़ा) लगा होता था जिसे केवल उमराव ही लगा सकते थे और विशेषकर अमरशाही पता में लगाया जाता था । इस पर कलंगी व तुर्रा लगाया जाता था । यह कलंगी किसी पक्षी के परों की बनायी जाती थी तथा इस संबंध में भी विभिन्न सामन्तों को भिन्न भिन्न पक्षी के परों की कलंगी लगाने पर विशेषाधिकार प्राप्त था । कलंगी के नीचे हीरा, पन्ना या माणक का सिरपेच लगा रहता था । कमर पर एक सुनहरा कमरपट्टा बाधा जाता था जिसके बीच में जड़ाउ काम किया होता था । उमराव कीमती आभूषण पहनते थे । उन्हें पैर में सोना पहनने का अधिकार प्राप्त था बायें हाथ में मखमल के म्यान में रखी सुनहरी मूठ की तलवार होती थी । गले में एक रूमाल होता था जिसके वक्षस्थलीय छोर पर ग्रन्थि नहीं लगाई जाती थी । इस साज सज्जा में तनिक भी कमी रह जाती तो ड्योढीदार दरबारी को दरबार में प्रवेश की अनुमति नहीं देता था । अलग - अलग त्यौहारों पर उपस्थिति होने वाले दरबारियों के लिए नियत विशेष पोशाक पहनना अनिवार्य होता था । सभी राजपूत राज्यों में

दरबारियों के लिऐ इकाई पोशाक निर्धारित थी । मारवाड़ में खिड़कियां पाग (विशेष प्रकार की पाग) जामा या अचकन, चूड़ीदार पायजामा दुपट्टा आदि पहनना आवश्यक था । शासक भी चमकीली व आकर्षक पोशाक में दरबार में उपस्थित होता था ।

पोशाक का मुलाहिजा करने के पश्चात् ड्योढीदार महाराजा या निहित पदाधिकारी को आगन्तुक की सूचना देता था। स्वीकृति मिलने पर उसे प्रवेश दिया जाता था । जिस प्रकार चारण कवि शासक का अभिवादन करने हेतु विरुदावली बोलते शिष्टाचार थे उसी प्रकार सामन्तों का भी विशिष्ट विशेषणों द्वारा यशगान करके उनके परम्परागत गौरव का स्मरण करते हुए अभिवादन किया जाता था । मेवाड़ के सामन्तों के कुछ विरुद वाक्य इस प्रकार थे ।

1. चूड़ावत, किशनावत, सांगावत व सारंगदेवोत सामन्तों के विरुद : - रावत पत रावत, दस सहस मेवाड़ रा भड कवाड । (रावतों में श्रेष्ठ दस हस्त्री मेवाड़ भूमि के विकट कपाट रक्षका)

2. शक्तावतों के विरुद्ध: - 'दूणा दातार, चौगुणा जूझार, खुरासाण मुलताण री आगल, घोड़ा चढ़ हाथियांरी, घड़ा राभजणहारा " (दुगने दानवीर, चौगुने योद्धा, खुरासान व मुलतान की अर्गला-इस्लाम से मातृभूमि की रक्षा करने वाले तथा अश्वों को हाथियों के मस्तक पर चढ़ाकर हस्तयारुढ यौद्धाओं का हनन करने वालें)

इस प्रकार राणावतों, राठौड़ों, झाला चौहान आदि सामन्तों के विरुद वाक्य थे । विरुदावली से ज्ञात हो जाता था कि अमुक सामन्त अमुक जाति का है । मारवाड़ में बगड़ी के जैतावत ठाकुर के लिए मारवाड़ रा भड़ कवाड़ शबदों का प्रयोग किया जाता था जिसका अर्थ था कि जैतावत सरदार मारवाड़ के द्वार रक्षक के रूप में प्रसिद्ध थे । राजपूताने के राजपूत राज्यों में सामन्तों के लिए विरुदावली बोलने की परम्परा थी ।

शासक को सम्बोधित करते समय विभिन्न जातियों के लोग नियत सम्मान सूचक शब्दों का प्रयोग करते थे । क्षत्रिय लोग ' अन्नदाता' शब्द का प्रयोग करते थे तथा ब्राह्मण महाराजा को सम्बोधित करते समय ' 'गौ ब्राह्मण प्रतिपालक " जैसे शब्द काम में लेते थे । महाराजा जब सभा मण्डप में प्रवेश करता था उस समय चौबदार नियत शब्दावली का प्रयोग करता था जिसे 'नजर दौलत ' कहा जाता था । इसका अर्थ था कि जिस पर ही महाराजा की नजर पड़ती है वह सम्पन्न हो जाता है । महाराजा के आने पर सभी सभासद अदब से खड़े होकर ' 'खमा खमा " कहकर अभिनन्दन व स्वागत करते थे । चारण महाराजा का विरुदावली बोलकर अभिवादन करता था । उदयपुर के महाराणा के लिए चारण संक्षेप में इस प्रकार विरुदावली बोलता था - ' 'हिन्दुस्तान रा छत्र, हिन्दुस्तान रा सूरज महाराणा (पिता का नाम) के पुत्र (नाम) महाराणा अन्नदाता पृथ्वीनाथ का छात्र कायम " । दरबार कक्ष में प्रवेश होने पर सामन्त झुक कर प्रणाम करता था । शासक खड़ा होकर उसका स्वागत करता था । इस प्रक्रिया को ' 'ताजीम " कहते थे ।

28.05 दरबारी गठन एवं शिष्टाचार

राजपूताना के राजपूत राज्यों में दरबार की सामान्य प्रक्रिया इस प्रकार थी । दरबार कक्ष में प्रवेश होने पर सामन्त झुककर मुगल शैली में दाहिने हाथ से तीन बार सलाम करता था । यदि सरदार ताजीमी होता था तो शासक अपने स्थान पर खड़ा हो जाता था । सामन्त दरबार कक्ष के मध्य पहुँचने पर एक बार पुन : झुककर तीन बार अभिवादन करता था । कई राज्यों में बीन बार झुक कर सलाम

करने की प्रथा नहीं थी । सामन्त शासक के निकट पहुँच अपनी तलवार उसके समक्ष रखकर झुकता था और उसके अचकन व सेरवानी के पल्ले को छूता था । तब शासक सामन्त के अभिवादन को स्वीकार करते हुए अपने हाथ उसके कन्धे पर रख देता था । इस प्रक्रिया को ' 'बाह पसाव '' का कुरब कहते थे । मेवाड़ में सभी उमरावों (सोलह) को 'बाह पसाव '' का विशेषाधिकार प्राप्त था । इस प्रकार अभिवादन करने के पश्चात् सामन्त नजर-निछरावल करता था तथा दरबार में अपने निश्चित स्थान पर आसन ग्रहण कर लेता था । सभी सामन्तों को उनके निश्चित स्थानों पर बैठाने का दायित्व दरीखाने (सभाभवन) के प्रभारी (दारोगा) का था । मेवाड़ में महाराणा के दाहिने हाथ की बैठक को 'बड़ी ओल ' तथा बायें हाथ की बैठक को 'कुंवारों की ओल ' कहा जाता था । उमरावों को बड़ ओल की प्रथम पंक्ति में बैठने का अधिकार प्राप्त था । उमरावों के लिए बैठने का क्रम भी निर्धारित था । उमरावों के नीचे युवराज की बैठक होती थी । महाराणा के सामने बनेड़ा, शाहपुरा, बागोर, शिवरती, कुरजाली व सिन्धी उमराव जिसे मेवाड़ में 'सतरहवा' उमराव कहा जाता था, बैठते थे । जयपुर में बड़ी कोटडी के 12 सरदार दरबार में आगे पंक्ति में बैठते थे । मारवाड़ में राव जोधा के काल से ही 'जीवणी ओर डावी ' मिसल में सामन्तों के बैठने का सिलसिला आरम्भ हो गया था । बीकानेर राज्य में भी मारवाड़ राज्य का अनुसरण किया गया था । मारवाड़ में राव रणमल के वंशज 'जीवणी मिसल ' में तथा राव जोधा के वंशज 'डावी मिसल ' में बैठने के अधिकारी थे । इसी प्रकार बीकानेर में राजस्थान राव बीका के चाचाओं के वंशज 'जीवणी मिसल ' और उसके स्वयं के वंशज 'डावीमिसल ' में बैठते थे । मेवाड़ दरबार के की एक विशेषता थी । जहां विदेशी राजपूत खांप के सामन्त जैसे झाला, चौहान राठौड़ आदि को दरबार में युवराज से निवासियों अधिक सम्मान प्राप्त था ।

राजपूत शासक अपने भाइयों के साथ ताजीमी सरदारों की भांति व्यवहार करते थे । उन्हें दरबार में उमरावों के समान ही सम्मान दिया जाता था । मुत्तसद्दियों को जिन्हें ताजीम व कुरब प्राप्त थे, ताजीमी सरदारों की तरह सम्मान दिया जाता था और उन्हें दरबार में बैठने का अधिकार था । अन्य मुत्तसद्दी व खवास पासवान दरबार की कार्यवाही के समय कला एवं खड़े रहते थे । जब दरबार की कार्यवाही समाप्त हो जाती थी तब महाराजा सामन्तों को पान का बीड़ा दिया करता था । शिल्प उच्च का के सामन्तों को पान बीड़ा शासक स्वय देता था तथा अन्य दरबारियों को दरबार में नियत पदाधिकारी के द्वारा बीड़े दिये जाते थे । दोहरी ताजीमी सरदारों के जाते समय भी महाराज खड़े होकर उनके अभिवादन को स्वीकार करते थे । अन्य सभासद् झुककर महाराजा का अभिवादन करते थे । महाराजा के चले जाने के पश्चात् सभासद सभाभवन से प्रस्थान कर जाते थे ।

मारवाड़ में सरदारों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया था । प्रथम श्रेणी के सरदार सिरायत कहलाते थे । प्रारम्भ में ऐसे सामन्तों की संख्या मात्र आठ थीं : -

रिया खैरवा रायपुर आहुआ आसोप ।
गाड़ी कणाणों खींवसर आठों विशाल अनोप । ।

बाद में इनकी संख्या 12 तक पहुँच गई । इन सिरे के सरदारों का दरबार में बैठने के स्थान राजा के पास सबसे आगे रहता था । वे दो मिसलों (पंक्तियों में) महाराजा के दाई और बाईं ' ओर निश्चित स्थान पर बैठते थे । राव रणमल के वंशज दाईं मिसल और जोधा के वंशज बाईं मिसल के सरदार थे । दाहिनी पंक्ति में शीर्ष स्थान पर आउवा के चांपावत ठाकुर को और बांई पंक्ति में प्रथम स्थान पर रिया ठाकुर (मेडतियां) को बैठने का अधिकार दिया गया था । सिरायत के सरदारों को दोहरी

ताजीम प्राप्त थी । दोहरी ताजीम से तात्पर्य यह है कि जब सरदार राजा के समक्ष उपस्थित होता था तब उसकी उपस्थिति के ओर प्रस्थान करते समय महाराजा खड़े होकर उसका अभिवादन ग्रहण करता था । इकहरी ताजीमी सरदार के लिए राजा केवल आने पर ही उसका अभिवादन ग्रहण करता था । इसके अतिरिक्त कुछ सरदारों को बाह- पसाव और हाथ के कुरब का सम्मान प्राप्त था । वह महाराजा के समक्ष उपस्थित होता और अपनी तलवार महाराजा के पैरों के पास रखकर घुटने या अचकन के पल्ले को छूता था तब महाराजा उसके कंधों पर हाथ रख देता था ।

इसी प्रकार जिसे हाथ का कुरब प्राप्त था महाराज उसके कंधे पर अपना हाथ लगाकर अपने हाथ को अपनी छाती तक ले जाता था । इस प्रकार का सम्मान या कुरब सामन्तों को बहुत बड़ी राजकीय सेवा करने पर ही प्रदान किया जाता था । मारवाड़ में चंडावल के ठाकुर ने महाराजा विजयसिंह से निवेदन किया कि उसे हाथ का कुरब इनायत किया जावे। इसके बदलें में वह महाराजा को चालीस पचास हजार रुपये नजर करने को तैयार था । महाराजा ने इस धन राशि को लेना स्वीकार नहीं किया और ठाकुर को कहलाया कि कुरब सिर साटै मिलता है दाम साटै नहीं । इस प्रकार की ताजीमें व कुरब लगभग सभी राजपूत राज्यों में सरदारों को देने की प्रथा थी ।

राजपूत राज्यों में दरबार में बैठक के प्रश्न को लेकर कभी कभी सामन्तों के बीच झगड़ा हो जाता था जिसे शासक समझा बुझाकर शान्तिपूर्वक सुलझाता था । जब कभी दरबार में बैठने की व्यवस्था आयताकार होती थी तब मुत्तसद्दी दीवान, बक्शी मुसाहिब, पुरोहित और व्यास जिन्हें बैठने का अधिकार प्राप्त था शासक के सामने एक पंक्ति में बैठते थे ।

28.06 दरबारी उत्सव एवं त्यौहार

गणगौर, दशहरा, होली, दीवाली, रक्षाबन्धन, अक्षयतृतीया, शासक के जन्मदिवस और राज्याभिषेक जैसे त्यौहारों व शुभ अवसरों पर इन राजपूत राज्यों में विशेष दरबारों का आयोजन होता था । इनमें सामन्तगण व सभासद् अपनी शाही व भड़कीली पोशाक में उपस्थित होते थे तथा अपने शासकों का अभिवादन व नजर निछरावल करते थे । ऐसे अवसरों पर शासक अपनी जनता के बीच उपस्थित होते थे और उसके साथ मिलकर बड़े ठाट से व उत्साहपूर्वक त्यौहार मनाया जाता था ।

मेवाड़ में गणगौर, दशहरा और होली के त्यौहार मुख्यरूप से राज्य स्तर पर मनाये जाते थे । इन अवसरों पर महाराणा की ओर से सामन्तों को उदयपुर में उपस्थित होने हेतु 'परवाना ' भेजा जाता था । महाराणा का परवाना प्राप्त होने पर सामन्त अपनी जमीयत लेकर उदयपुर आते थे ।

मेवाड़ में गणगौर का त्यौहार दो बार मनाया जाता था । एक चैत्र वदि 3 को तथा दूसरा वैशाख वदि 3 को । वैशाख वदि 3 के त्यौहार को धींगा गणगौर कहते हैं । तृतीया के दिन तीसरे पहर त्रिपोलिया द्वार से तीन बार नक्कारा बजाया जाता था । तीसरे नक्कारा के साथ ही महाराणा जुलूस की सवारी हेतु घोड़े पर सवार हो जाता था । नक्कारे बजने के साथ ही सामन्त अपनी अपनी हवेलियों से रवाना होकर तीसरे नक्कारे के बजने तक महाराणा की सवारी में सम्मिलित हो जाते थे । यह सवारी महलों से रवाना होती थी । सवारी के जुलूस में सबसे आगे निशान का हाथी रहता था उसके पीछे उमराव अपने उत्तराधिकारी कुंवर सहित उनके पीछे महाराणा के भाई बेटे उत्तराधिकारी राजकुमार सहित, उनके पीछे बनेड़ा व शाहपुरा के राजाधिराज अपने उत्तराधिकारी कुंवरो सहित, उनके पीछे प्रधान तथा उनके पीछे अन्य दरबारी लोग होते थे । इनके पीछे महाराणा घोड़े पर सवार होते थे । महाराणा के दोनों तरफ खवासी के घोड़े होते थे जिन पर एक सामन्त चंवर लेकर बैठता था । महाराणा की खवासी मे

पहले प्रधान (भांजगड़) के बैठने का दस्तूर था, याने सलूम्बर का रावत बैठता था । बाद में जब सलूम्बर के रावत का वंशानुगत भांजगढ का अधिकार समाप्त हो गया तब से परलोसी अथवा असीन्द अथवा सरदारगढ के सामन्त महाराणा की खवासी में बैठते थे । महाराणा के साथ छत्र, छहांगीर, किरणियां, अडाणी आदि (राजकीय चिन्ह) लवाजमा होता था तथा महाराणा के पीछे सामन्तों के घुड़सवार व उनके छुटभाई जागीरदार होते थे । सवारी के सबसे पीछे नक्कारे का हाथी होता था । महाराणा की यह जुलूस सवारी पिछोला झील के त्रिपोलिया घाट पर रुकती थी, जहाँ दो बड़ी नावें, बड़ी साज सज्जा के साथ तैयार रहती थीं । एक बड़ी नाव जिसमें एक सिंहासन होता था और इस सिंहासन पर छत्री लगी रहती थी । इस सिंहासन पर महाराणा बैठ जाता और नीचे के तख्त पर सामन्त अपने दर्जे के अनुसार बैठ जाते थे । नाव की सवारी का बड़ा सम्मान समझा जाता था और यह सम्मान मेवाड़ के सभी उमरावों को प्राप्त था । यह नाव की सवारी थोड़ी दूर बड़ी पोल तक जाकर वापिस त्रिपोलिया घाट पर पहुँचने पर महाराणा अपने सिंहासन से खड़े होकर गणगौर माता को प्रणाम करता तथा अन्य पंडित वगैरा उसकी पूजा करते थे । तत्पश्चात गणगौर की सवारी पुन: महलों में चली जाती थी । इसके बाद महाराणा की नाव पुन: आगे बढ़ जाती थी, जिसके आगे पीछे अनेक नांवें चलती थी । त्रिपोलिया घाट पर आतिशबाजी का आयोजन होता था । यह दृश्य बड़ा मनोरम होता था। महाराणा रूपघाट पर उतरकर तामजाम (विशेष प्रकार की पालकी) पर सवार हो महलों में प्रवेश कर जाता था । तथा सामन्त गण भी महाराणा के साथ महलों में पहुँचते थे वहा महाराणा सामन्तों को सीख का बीड़ा देकर विदा करता था। उमरावों को गणगौर का सिरोपाव जिसमें, पग दुपट्टा फेटां आदि थे, प्रदान किया जाता था ।

दशहरे का त्यौहार सभी राजपूत राज्यों में बड़ी तैयारी के साथ धूम धाम से मनाया जाता था । आसोज सुदि 10 (विजयदशमी) को दशहरे का त्यौहार होता था । यह रावण पर राम की विजय का त्यौहार है । त्यौहार का आरम्भ स्थापना (प्रतिपदा) के दिन से ही हो जाता था । ऐतिहासिक तलवारें व अन्य शस्त्र सिंहवाहिनी दुर्गा (महाकाली) की प्रतिमा के समीप रख दिये जाते थे । इनकी नवरात्र में पूजा की जाती थी । दशहरे के दिन ये पुन : यथा स्थान पर रख दिए जाते थे । इस अवसर पर सामन्त अपनी निश्चित जमियत के साथ राजधानी में उपस्थित होते थे । दरबार लगाया जाता था

जहा शासक को सामन्तगण नजर निछरावल ताजीम व कुरब के नियमानुसार किया करते थे । शासक इस अवसर पर अपने सामन्तों, मुत्तसदियों व सुयोग्य राज्यपदाधिकारियों को इनाम इकरार सम्मान सिरोपाव देते थे । इस अवसर पर वृक्ष, घोड़ों, हाथी, शस्त्रों आदि की पूजा की जाती थी । महाराजा के सामने घोड़ों व हाथियों का प्रदर्शन करवाया जाता था । शासक सामन्तों की जमियत का निरीक्षण किया करता था । मेवाड़ का प्रथम पालिटिकल स्पेन कर्नल टॉड अपने कार्य अवधि में ऐसे सैनिक प्रदर्शनों में उपस्थित रहता था । वह बड़ा प्रभावित हुआ था ।

दशहरा का उत्सव परम्परागत रूप से सभी राजपूत राज्यों में मनाया जाता था । जोधपुर राज्य में दशहरा का दरबार नवमी को लगाया जाता था जबकि अन्य राज्यों में इसका आयोजन दशम को होता था । वहा दशम को महाराजा जुलूस में सम्मिलित होता था । जुलूस गढ़ से रवाना होकर रावण के चबूतरे पहुँचता था जहा रावण के पुतले को जलाया जाता था । जुलूस किले की ओर लौटता था । किले में भगवान की पूजा की जाती थी ।

बीकानेर में राव बीका द्वारा जोधपुर से लाई गई कुलागत वस्तुएँ तथा घोड़े (दलश्रृंगार) की पूजा की जाती थी । नगाड़ा (बैरीशाल नक्कारा) निशान, युद्ध के बाजे जैसे छभि, ढोल (भंवरढोल) जय

ध्वजा आदि की पूजा की जाती थी । इस अवसर पर दशहरा का विशिष्ट दरबार लगाया जाता था जिसमें दरबारी गण दरबार को नजर. निछरावल करते थे । शाम को महाराजा अपने सामन्त व दरबारियों के साथ जुलूस में खेजडी (वृक्ष) पूजा के लिए जाता था । वहा महाराजा बाण छोड़कर रावण के पुतले का छेदन करता था तथा उसे जलाया जाता था ।

जयपुर में राजसिंहासन व शस्त्रों के पूजन के पश्चात् सर्वऋतु महल में दशहरे का भव्य दरबार लगाया जाता था । राज्य के सभी सामन्त पदाधिकारी और खवास पासवान दरबार में उपस्थित रहते थे । अपरान्ह में महाराजा दलबल के साथ विजयबाग जाता था जहां खेजडी (वृक्ष) की पूजा करता था । रात्रि को आतिशबाजी की जाती थी । दूसरे दिन महाराजा के अपने पूरे लवाजमे के साथ फतह टीबा पहुँचता था । जहां वह हाथी के रथ को हांकता था । वहां राजकीय फौज का निरीक्षण किया जाता था । इस अवसर पर सैनिक अपनी कलाबाजी का प्रदर्शन किया करते थे ।

मेवाड़ के दशहरे के त्यौहार का बड़ा महत्व था । मेवाड़ के सामन्तों को दशहरे के दस दिन पूर्व उदयपुर पहुँचना स्व पड़ता था तथा बीस दिन बाद तक वहा ठहरना पड़ता था । महाराणा के परवाने के प्राप्त होने पर वे अपनी जमियत के साथ उदयपुर पहुँच जाते थे । सामन्तों के उदयपुर पहुँचने पर महाराणा स्वयं सलूम्बर, कोठारिया, सादड़ी, व बेदला कला एवं के सामन्तों से मिलने उनकी हवेलियों पर जाता था ।

दशहरे के दिन शाम को लगभग साढ़े चार बजे त्रिपोलिया दरवाजे से तीन बार नक्कार बजता था । तीसरे नक्कारे की ध्वनि के साथ ही महाराणा के जुलूस की सवारी, जिसमें सामन्त, मुत्तसदी आदि सम्मिलित होते थे, रवाना हो जाती थी और हाथी पोल के बाहर तक जाती, वहा महाराणा खेजडी (वृक्ष) का पूजन करता था । यह स्थल शामियाना, तोरण आदि से सजाया जाता था । महाराणा शामियाने में गद्दी पर आसन ग्रहण करता था और उसके चारों ओर सामन्त अपनी श्रेणी के अनुसार बैठ जाते थे । चारण, कवि, महाराणा के पूर्वजों की वीरगाथा का गायन करते थे । तत्पश्चात् क्रम से सभी सामन्त चारण, अहलकार आदि महाराणा को नजराना देते थे । दरबार के समाप्त होने पर महाराणा ताजीमी सरदारों को अपने हाथ से पान का बीड़ा प्रदान करता था । अन्य सामन्तों को तम्बोल का दारोगा अथवा दरबार का दारोगा पान का बीड़ा प्रदान करता था । तत्पश्चात् महाराणा हाथी पर सवार होकर उसी जुलूस के साथ महलों में प्रवेश कर जाता था । महलों में नाहरों के दरीखाने (सभा मण्डप) में दरबार होता था तथा थोड़ी देर बाद महाराणा उमरावों को सीख का बीड़ा ' प्रदान कर विदा करता था । यह सीख का बीड़ा उमरावों को उनके दर्जे के अनुसार इनायत किया जाता था । इसके बाद महाराणा अपने महल में जाकर अपनी जुलूस की पोशाक उतारता था । महाराणा की यह पोशाक कोठारियों के रावत को दी जाती थी ।

दशहरा व शरद पूर्णिमा के मध्य एक दिन सामन्तों की जमियत की उपस्थिति ली जाती थी तथा इसका निरीक्षण किया जाता था । इसे स्थानीय भाषा में मुहल्ला कहते थे । इस अवसर पर भी महाराणा दशहरे की तरह जुलूस में परैड स्थल पर पहुँचता था। इस जुलूस में सामन्त फौजी पोशाक में उपस्थित होते थे । सिरपर लोहे का टोप, जिस पर तुर्रा कलंगी लगे होते थे । बदन पर कवच हाथों में दास्ताने, पैरों में कड़ीदार पायजामे, हाथों में बर्छे लिए हुए घोड़ों की पीठ पर पाखर (लोहे का आवरण) और मुहँ पर बनावटी सूण्डे लगाई जाती थी । यह जुलूस सारणेश्वरगढ पहुँचता था जहां दरबार का

आयोजन होता था फिर फौजों का निरीक्षण किया जाता था । तत्पश्चात् महाराणा की जुलूस की सवारी पुन : महलों में आ जाती थी ।

दशहरा के पश्चात सामन्तों को अपनी जागीरों में जाने के लिए महाराणा की स्वीकृति लेनी पड़ती थी । महाराणा इन सामन्तों को आज्ञा प्रदान करते समय 'सीख का बीड़ा ' दिया करता था तथा उमरावों को निश्चित मूल्य का सिरोपाव देता था । इस सीख के सिरोपाव में किसी को साफा, किसी को दुपट्टा, किसी को पल व दुपट्टा दोनों नियमानुसार दिया जाता था । इस अवसर पर सभी सामन्तों को उपस्थित होना अनिवार्य था । यदि किसी कारण से कोई सामन्त उपस्थित नहीं होता था तो उसे इसकी सूचना महाराणा को भेजता था और अपने पाटवीं कुंवर के साथ जमियत भेजने की व्यवस्था करनी पड़ती थी । इस अवसर पर सामन्त को लगभग एक महीने तक उदयपुर में चाकरी देनी पड़ती थी ।

अन्य त्यौहारों पर भी इन राजपूत राज्यों में उत्सव मनाने के तौर तरीके थे । इन अवसरों पर शासक अपनी जनता के सम्पर्क में आता था । शासक की शान शौकत, सामन्तों की तड़क भड़क और पदाधिकारियों की साज सज्जा से जनता प्रभावित होती थी । त्यौहारों के दरबार के अतिरिक्त राज्य में गमी के अवसर पर भी दरबार का आयोजन होता था । जब कभी राज परिवार में मौत हो जाती तब महाराजा सफेद पोशाक और सफेद साफा पहिन कर दरबार में बैठता था । जहा सामन्त, मुत्तसदी और खवास पासवान भी सफेद पोशाक और सफेद साफा पहनकर महाराजा के समक्ष दरबार में उपस्थित होते थे और समवेदना प्रकट करते थे । राज्य में शोक के समय के नियम बने हुए थे । शोक की अवधि में गढ पर व ड्योढ़ी पर नौबत व नगाड़े नहीं बजाये जाते थे । शोक समाप्त होने की सूचना ढोलकी की चोट के माध्यम से दी जाती थी ।

जब कभी पडौसी व समकालीन शासन के निधन के समाचार आते तब दिवंगत आत्मा के शोक में तीन टक या एक या दो दिनों तक नौबत नगाड़े नहीं बजाये जाते थे । यदि कोई शासक मातमपुर्सी हेतु आता तब आतिथेयी शासक के दरवाजे पर मेहमान शासक की अगवाई के लिए उपस्थित नहीं होते थे । शासक अपने स्थान पर खड़ा हो जाता था और मेहमान शासक को अपने पास गद्दी पर बैठा देता था। समवेदना प्रकट करने के पश्चात वह रवाना होता तब शोकग्रस्त शासक खड़ा होकर उसे विदाई देता था । मातमपुर्सी के समय सामान्य शिष्टाचार व औपचारिकता के नियम स्थगित रहते थे।

राजपूत राज्यों में शोक निवारण के भी नियम व दस्तूर थे । उदाहरण के तौर पर मेवाड़ में अपनाये गये दस्तुरों का यहाँ विवरण दिया जा रहा है । मेवाड़ के सामन्तों में बेदला के राव को विशेषाधिकार प्राप्त था । उसकी अनुपस्थिति में कोई नया महाराणा गद्दीनशीन नहीं हो सकता था, क्योंकि नये महाराणा के शोक निवारण का दस्कूर बेदला राव के हाथ से सम्पन्न होता था । बेदला राव और उत्तराधिकार राजकुमार स्वर्गीय महाराणा की दाहक्रिया में सम्मिलित होता था । उत्तराधिकारी राजकुमार का अपने पिता की दाहक्रिया में उपस्थित न होने की सभी राजपूत राज्यों में परम्परा थी । मारवाड़ में इस परम्परा के विरुद्ध महाराजा उम्मेदसिंह की दाहक्रिया में उसके पाटवी पुत्र हनवन्तसिंह उपस्थित हुये थे । शासक के देहान्त हो जाने पर राजधानी व गढके सभी द्वार बन्द कर दिये जाते थे । स्वर्गीय महाराणा की दाहक्रिया से सभी लोगों के लौट आने पर सभी सामन्त व दरबारी दरीखाना में एकत्रित हो जाते थे । उत्तराधिकारी राजकुमार को दरीखाने में आने की प्रार्थना की जाती थी तब वह अपने सिर पर शोक की सफेद पछेवडी (चादर) रखकर दरीखाने में आता था । बेदला राव अपने

हाथ से शोक की पछेवडी उत्तराधिकारी राजकुमार से सिर से अलग करता था तथा गद्दी पर बैठने की प्रार्थना करता था । जवाहर खाने (जेवर का भंडार) से पांच जेवर नाक-कानों के मोती, कंठला, पुहन्ची और लंगर मंगाये जाते थे तथा बेदला राव अपने हाथ से नये महाराणा को ये पांच जेवर पहनाता था । तत्पश्चात् सामन्तों द्वारा नजराना आदि देने का दस्तूर किया जाता था । नजराना देने की रस्म पूरी होने पर बेदला राव की प्रार्थना पर महाराणा नौबत बजवाने, राज्य के कार्यालय पुन: खोलने तथा शहर के दरवाजे खोलने का आदेश देता था । तत्पश्चात राज्य के रसोड़े में भोजन करने वालों के लिए उस दिन खीचडी, दाल मूंग व तेल आदि, बेदला राव की ओर से भिजवाया जाता था । शोक निवारण का दस्तूर सम्पन्न हो जाने के बाद शुभ मुहूर्त के दिन महाराणा का राज्याभिषेक उत्सव मनाया जाता था । जिसमें उन्दरी गांव का गमेती भीलराज (भोमिया सरदार) अपने अंगूठे को चीर कर महाराणा के मस्तक पर टीका किया करता था । महाराणा राजसिंह द्वितीय के समय यह प्रथा समाप्त कर दी गई थी । राज्य में भीलों का बड़ा सम्मान था । मेवाड़ के राज्य चिन्ह में भील को तीर कमान लिए हुए दिखाया गया है । बीकानेर राज्य में इस तिलक लगाने की प्रथा को गोदारा जाटों के मुखिया सम्पन्न करते थे और यह राज्य में सदैव सम्पन्न होती रही । मेवाड़ में स्वर्गीय महाराणा की संवत्सरी का दस्तूर भी बेदला राव द्वारा सम्पन्न होता था ।

शोक निवारण के दस्तूर के सम्पन्न होने के बाद शासक व दरबारी रंगीन साफा पहनते थे जिसे रंग का पेचा या रंग की पाग कहते थे । मेवाड़ में यह रंग की पाग सामन्तों को राजकीय कपड़े के कोठार से दी जाती थी । जयपुर राज्य में इसे रंग का दर कहा जाता था । इस अवसर पर रंग का पेचा महाराजा के ससुराल से आता था । मारवाड़ में भी इसी प्रकार की प्रथा थी । मारवाड़ में नये राजा के राजतिलक के समय तिलक करने का अधिकार गाड़ी के जैतावत ठाकुर को था । वह अपने अंगूठे को तलवार से चीरकर रक्त से टीका किया करता था । महाराणा सरदारसिंह के राजतिलक के समय (1895 ई. में) रक्त से टीका करने की प्रथा उठा दी गई थी । इस अवसर पर बगड़ी के ठाकुर (बैरीसाल) ने महाराजा को कुंकुम का तिलक लगाया था । राजतिलक के अवसर पर पूर्व पुरुषों की नामावली पढ़ी जाती थी । वह राज्य का पोलपात (वंशकर्मज्ञ) पढ़ा करता था । जोधपुर में मूंधियाड़ के बारहठ को राजतिलक के समय वंशावली पढने का अधिकार था।

28.07 कतिपय परम्पराएं

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजपूत शासक अपनी परम्पराओं के प्रति पूर्णतया निष्ठावान थे और उनका वे दृढ़ता से निर्वाह करते थे ।

1. सामन्त वर्ग व अन्य दरबारियों को दरबार भवन या दरबार स्थल पर पहुँचते समय एक निर्धारित स्थान पर अपनी पालकी व घोड़े व हाथी से उतरना पड़ता था । उस स्थान से वे पैदल दरबार स्थल पर पहुँचते थे । जोधपुर में घोड़े पर सवार होकर किले में जाने वालों में से महाराजा लोग लोहापोल के आगे की किलेदार चौकी के आगे के प्याद बख्यियों के दालान के सामने, रावराजा लोग लोहापोल के पास, सिरायत (मिसल के सरदार) सरदार जोधाजी के फलसे के आगे हाथ के कुरब वाले जोधाजी के फलसे के भीतर, ताजीमी और बांहपसाव वाले जिनको सामने के ओल में बैठने और मरने पर रथी के आगे घोड़ा निकालने का अधिकार था जोधाजी के फलसे के बाहर, अन्य ताजीम और बांहपंसाव वाले चौहानों के दालान से पहले कौने के पास या इमरती पोल के पास, दीवान और बख्शी मुत्तसद्दी

इमरती पोल की अगली मेहराव के नीचे और बाकी मुत्तसद्दी (व्यास पुरोहित, सिकन्दर) इसके पीछे घोड़े से उतर जाते थे ।

बीकानेर में त्रिपोलिया दरवाजा अन्तिम स्थान था जहा सभी को घोड़े व पालकी से उतरना होता था । इसी प्रकार के सभी राज्यों में नियम बने हुए थे ।

2. जैसा कि पर लिखा गया है कि राजपूत राज्यों में प्रथम श्रेणी के सामन्त खास रुक्के के प्राप्त होने पर ही दरबार उपस्थित होने जाते थे । (खास रुक्का व खरीता) शासक द्वारा भेजा हुआ सामन्त को मिलता था तब वह उसे बड़े आदर के साथ दोनों हाथों में लेता था और उसे माथे पर लगाता । इसके बाद वह उसे खोलता था और तुरन्त इसकी पालना करता था । महाराणा संग्रामसिंह के काल में सलुम्बर का रावत एक लम्बी सेवा के पश्चात उदयपुर से अपने गांव पहुँचा ही था कि महाराणा का उसे पुन: उदयपुर में उपस्थित होने के लिए खास रुक्का प्राप्त हो गया । वह अपने परिवार शिल्प के सदस्यों के बिना मिले यहाँ तक कि उसने अपने जूतों पर पड़ी रेत को भी साफ नहीं किया और तुरन्त उदयपुर के लिए रवाना हो गया । महाराणा उसकी स्वामी भक्ति, सत्यनिष्ठा और आज्ञाकारिता से बहुत प्रसन्न हुआ था और उसने उसे सम्मान व अतिरिक्त अधिकार प्रदान किये ।

3. राजपूत सामन्त और मुलसद्दी जब दरबार में उपस्थित होते तब वे शासक को झुक कर मुजरा करते थे और उससे उपहार प्राप्त करते थे । ब्राह्मण दरबार में उपस्थित होते तब वे गुजरा न करके महाराजा को आशीर्वाद दिया करते थे।

4. सभी दरबारी शासक को नजर करते थे । चारण और ब्राह्मणों द्वारा दी गई नजर की धनराशि को महाराणा केवल छूता था और उसे उन्हें लौटा देता था । अन्य व्यक्तियों द्वारा दी गई नजर धन राशि वह स्वीकार करता था ।

5. पान का 'बीड़ा दिये जाने के बाद दरबार की कार्यवाही समाप्त हो जाती थी । जब पान का बीड़ा शासक के द्वारा सामन्त को दिया जाता था तब वह उसे बड़े अदब से खड़े होकर दोनों हाथों को फैलाकर स्वीकार करता था । शासक अपने स्थान पर खड़ा हो जाता था । सामन्त पान का बीड़ा प्राप्त करके सभा भवन से प्रस्थान कर जाता था ।

महाराजा को जब कभी कहीं से उपहार के रूप में वस्तुएँ प्राप्त होती थी तब वह उसमें से कुछ भाग सामन्तों को बांटता था । शाही बाग की पैदावार में से ही सामन्तों को हिस्सा दिया जाता था । कोटा राज्य में यह प्रथा थी कि पैदावार में से कुछ भाग सामन्तों की हवेलियों में भिजवाया जाता था ।

मुगल सम्राटों की भांति राजपूताना के शासक भी अपने सामन्तों को समय-समय पर पोशाक इनायत करते थे । इसे सम्मान सूचक माना जाता था । मुगल इसे खिलअत कहते थे जबकि राजपूताना में इसे 'सिरोपाव ' की संज्ञा दी गई थी । सीख के रूप में राजपूताना में सिरोपाव भी दिया जाता था । उत्सवों के समय शासक के द्वारा सामन्तों को पोशाक प्रदान करने की प्रथा थी । महाराणा उदयपुर दशहरा त्यौहार पर अपनी पहनी पोशाक कोठारियां के सरदार को देता था। जयपुर के महाराजा रक्षाबन्धन के त्यौहार पर अपनी पहनी पोशाक पुरोहित को देता था । दीवाली पर जयपुर महाराजा अपनी पोशाक माचेरी के जागीरदार को इनायत करता था ।

जब कभी शासक किसी राजकुमार या सामन्त को देश निकाला देता था तब वह उसके लिए काली पोशाक, काला जामा, काले रग की ढाल व तलवार तथा काले रग का घोड़ा सिरोपाव के रूप में

भेजता था । यह संकेत था कि वह सूर्य उदय होने तक राज्य की सीमा के बाहर प्रस्थान कर जाय ।

6. जब कभी शासक जुलूस में हाथी पर सवार होता था तब उसके पीछे चंवर करने के लिए सिरायत उमराव बैठता था । मेवाड़ और मारवाड़ में प्रधान बैठा करता था । इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है ।

7. शासक सामन्तों की मान मर्यादा का बहुत ध्यान रखता था । त्रुटि होने पर सामन्त रुष्ट हो जाता था । जोधपुर के सामन्त नागौर के घेरे से लौटे तब महाराजा भीमसिंह ने कहा कि इनकी सवारी के लिए घोड़ों के स्थान पर बैलों की व्यवस्था की जाय । सामन्तों ने इसे अपना अपमान समझा । वे गोडवाड की तरफ पलायन कर गये और वहां से पडौसी राज्यों में चले गये । जोधपुर के महाराजा अभयसिंह ने सामन्तों की राय की अवहेलना करते हुए दिल्ली में ही सवाई राजा जयसिंह (जयपुर) की पुत्री से विवाह किया । सामन्तों की राय थी कि विवाह जोधपुर में सम्पन्न हो । सामन्त महाराजा से अनुमति प्राप्त किए बिना अपनी जागीरों में चले गये । महाराजा ने उन्हें समझा बुझाकर शान्त किया था।

सामन्त की उच्छृंखलता से खिन्न होकर शासक उसे दण्ड देता था । दण्ड स्वरूप सामन्त की ताजीम छीन ली जाती थी या जागीर जब्त कर ली जाती थी, उसकी गढ़ी नष्ट कर दी जाती थी । कभी-कभी शासक उद्दन्दी सामन्त की हत्या करा देता या उसे जहर का प्याला पिला देता था । 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस प्रकार की घटनाओं में वृद्धि होने लगी थी । शासक और सामन्त के बीच अविश्वास की भावना बढ़ने लगी थी ।

8. विद्रोही राजकुमार या विद्रोही सामन्त निराश होकर जब क्षमा याचना के लिए शासक के समक्ष उपस्थित होता था उस समय उसे निःशस्त्र कर दिया जाता था तथा उसे आभूषण उतारने के लिए कहा जाता था । उसके हाथ रूमाल इकाई से बांध दिये जाते थे । तत्पश्चात् उसे शासक के सम्मुख उपस्थित किया जाता था । वह शासक को झुककर मुजरा करते हुए क्षमा याचना करता था । इस प्रकार शासक प्रसन्न होकर उसके हाथ खोल देता था । दोषमुक्त सामन्त शासक के प्रति निष्ठा व वफादारी का विश्वास दिलाता था । तब उसे पुन: शस्त्र धारण करने तथा आभूषण पहनने की छूट दी जाती थी । इस प्रकार दोषमुक्त राजकुमार या सामन्त राज्य में पुन: प्रतिष्ठा पद प्राप्त कर लेता था ।?

दरबार के समय सभी दरबारी व शासक पूर्णरूप से शालीनता से बातचीत करते थे । वहां वाद विवाद के प्रश्न यथा सम्भव नहीं उठाये जाते थे । मेवाड़ में इसकी विशेष रूप से पालना की जाती थी । लावा के रावत ने महाराणा के आदेश के विपरीत अपनी गढ़ी की किलेबन्दी करली थी । इस सम्बन्ध में ठाकुर के कामदार और महाराणा द्वारा नियुक्त पदाधिकारी के बीच समस्या के समाधान के लिये बातचीत चल रही थी । उस समय दरबार में लावा का रावत महाराणा की सेवा में उपस्थित था । उसके और महाराणा के बीच शिष्टाचार में किसी प्रकार की कमी दृष्टिगत नहीं हुई थी । कोई भी उपस्थित दरबारी अनुमान नहीं लगा सका था कि लावा के रावत और महाराणा के बीच प्रतिरोध की स्थिति बनी हुई है ।

11. शासक अपने सामन्तों की गतिविधियों पर नजर रखता था । अपने गुप्तचरों के माध्यम से उनकी हरकतों का पता लगाता रहता था । सामन्तों की ओर से भी राजधानी में वकील नियुक्त रहते थे जो अपने ठिकानेदारों के हितों की रक्षा करते थे ।

12. सामन्त व दरबारी के निमन्त्रण पर शासक उसकी हवेली पर जाता था । शासक के अभ्यागमन पर भव्य तैयारी की जाती थी । शासक के आतिथ्य सत्कार हेतु सामन्त अपनी हवेली व कस्बे से कुछ दूरी पर उपस्थित रहता था । हवेली तक पहुँचने के लिए लाल कप बिछाया जाता था जिस पर चलकर शासक हवेली के दरवाजे पर पहुँचता था जहां मंगलाचार, आरती व मंगलकलश से उसका बड़ी तड़क भड़क के साथ स्वागत किया जाता था । हवेली में उसके बैठने के लिए कमरा या दालान सजाया जाता था जहा सिंहासन पर शासक को बैठाया जाता था । सामन्त, उसके सम्बन्धी व अनुयायी नजर निछरावल यथारीति करते थे । ऐसे अवसर पर सामन्त के द्वारा शासक को भेंट स्वरूप बहुत बड़ी धनराशि भी दी जाती थी । सम्भोज के समय नाच-गाने की व्यवस्था रहती थी । मारवाड़ में ऐसे अवसर पर सामन्त के द्वारा दो घोड़े भी नजर किये जाते थे (घोड़े की नजर) । इस आदर सत्कार के बदले शासक सामन्त को सिरोपांव दिया करता था । जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह जब कटालिया ठाकुर की हवेली में गये उस समय ठाकुर ने दो घोड़े नजर किये थे । महाराजा ने उसे हाथी सिरोपांव, कड़ों की जोड़ी, सिरपेंच, कंठी, दुपट्टा मदिल व दुसाला देकर सम्मानित किया था । मेवाड़ में एक विशेष प्रथा थी । दीवाली के दिन सामन्तों की हवेलियों पर 'हीड सींचवानें ' जाता था । मिट्टी के एक प्याले में तेल डालकर उसमें बाती जला दी जाती थी । उस प्याले को लेकर महाराणा अपने भाई-बेटों व नजदीकी रिश्तेदारों के यहाँ जाते थे, जहा वे (भाई बेटे आदि) उस प्याले में तेल डालते थे । उसे 'हीड सींचना ' कहते थे । इसका अर्थ यह था कि महाराणा की ज्योति सदा जगमगाती रहे और हम (तेल डालने वाले) इस ज्योति को जलती रहने के लिए सहायता देते रहें । महाराणा का 'हीड सींचवाने ' सामन्तों की हवेलियों में जाने को सामन्त अपना सम्मान समझते राजपूताना के राजपूत राज्यों में सामान्यत: उपर्युक्त परम्पराओं का प्रचलन था । किसी-किसी राज्य में कुछ अन्य परम्पराएँ भी थी । जैसे उदयपुर में कुछ उमरावों के राजधानी में पहुँचने पर महाराणा स्वय अगवानी करने जाता था । बनेडा के राजाधिराज को यह विशेष अधिकार प्राप्त था । उसकी अगवानी करने के लिए महाराणा सूरजपोल तक आता था ।

28.08 इकाई सारांश

इस प्रकार हमने अध्ययन किया कि मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था 'सामन्ती ' थी और सामन्ती प्रथा का प्रतिनिधित्व 'राज दरबार' में होता था । इस प्रथा की जीवन शैली दरबारी रीति-रिवाजों, परम्पराओं एवं मान्यताओं में केन्द्रित थी दरबार में सामन्तों की विभिन्न श्रेणियाँ थी जिसमें राज परिवार से जुड़े एवं अन्य विशिष्ट वर्गों से सम्बन्धित होते थे । उनके बैठने की एक विधिवत व्यवस्था होती थी । इसके अतिरिक्त राजा उन्हें दरबार में किस प्रकार का सम्मान देगा, यह भी निर्धारित था । दरबारी रीति-रिवाजों से सामन्ती जीवन आच्छादित था एवं राज्य कार्य सम्पादित होता था । दरबारी उत्सवों एवं त्यौहारों की अपनी छटा थी । राजा के राजतिलक व मृत्यु को अपनी प्रथाएँ थी तथा साथ ही दशहरा एवं गणगौर जैसे त्यौहारों को मनाने की अपनी एक धार्मिक व सांस्कृतिक प्रक्रिया थी । इसके अतिरिक्त

अन्य त्यौहारों एवं अवसरों पर राजस्थान स्थानीय मान्यताओं का सम्मान था । इन सब गतिविधियों ने सामूहिक रूप से दरबारी संस्कृति को जन्म दिया गया ।

28.09 अभ्यासार्थ प्रश्न परम्पराएँ

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये : -

(1) राजस्थान के राजपूत राज्यों के दरबारियों की व्याख्या कीजिए और बताइये कि वहा दरबार लगाने की क्या व्यवस्था रही थी?

(2) दरबारियों को दरबार में उपस्थित होते समय किन औपचारिकताओं की पालना करनी पड़ती थी, सविस्तार विवरण दीजिए ।

(3) राजस्थान के सजह दरबारों में उत्सव आयोजन के समय दरबारियों के शिष्टाचार पर प्रकाश डालिए । इन अवसरों पर शासक की क्या भूमिका रहती थी?

(4) राजस्थान के राजरू राज्यों की कतिपय विशिष्ट परम्पराओं की व्याख्या कीजिए ।

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये : -

(1) दायीं एवं बायीं मिसल से क्या तात्पर्य है ।

(2) कुरब एवं ताजीम से किन परम्पराओं का पालन होता था ।

(3) दरबार में गणगौर उत्सव मनाने की प्रथा किस प्रकार थी ।

(4) दरबार में राजतिलक प्रथा को किस भांति सम्पन्न किया जाता था ।

छात्र टिप्पणी

छात्र टिप्पणी

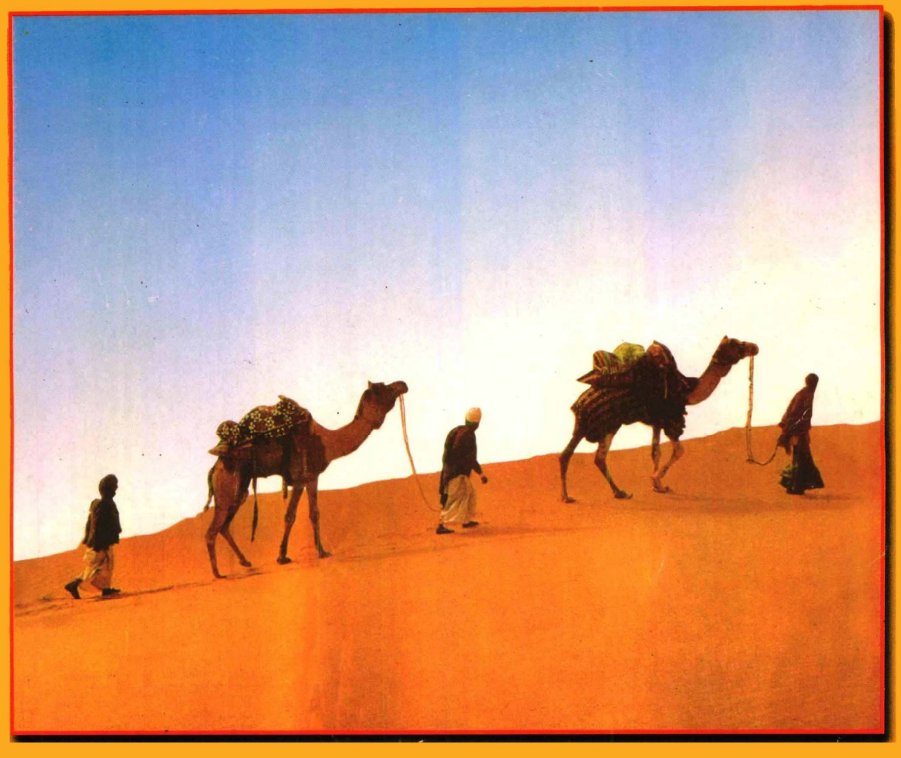

Published by : Director of Material Production & Distribution Kota Open University, Kota